२१वीं सदीं की हिंदी कविताओं में किसानों का चित्रण

डॉ. पटेकर विश्वनाथ चंद्रकांत
हिंदी विभागाध्यक्ष
महात्मा फुले आर्ट्स,सायन्स ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज,
पनवेल, मोबाइल नं. 9011933917
ईमेल-vishwanathpatekar87@gmail.com

भारत यह कृषि प्रधान देश माना जाता हैं। किसानों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव हैं। किसान पूरे देश का अन्नदाता हैं। वैश्वीकरण के दौर में उसकी भी स्थिति में सुधार होगा ऐसा लगा था। लेकिन आज के बाजारवादी दौर में वह हाशिए पर चला गया हैं। उसकी फ़सल सामाजिक समस्या बन गयी है। उसे अपनी फ़सल का उचित मूल्य नहीं मिल रहा हैं। कर्ज की समस्या से वह घिरा हुआ है। खाद, बिजली और पानी की समस्याएँ उसे परेशान कर रही हैं। उसका कई आयामों पर शोषण हो रहा है। आजादी के पहले शोषकों को किसान समझ सकता था। लेकिन आज उसका चालाकी से शोषण किया जा रहा है। इससे शोषकों को पहचानना भी मुश्किल हुआ है।आजादी के इतने साल बीत जाने पर भी किसानों को न्याय नहीं मिल पा रहा है। वह समस्याओं के मकड़ जाल में घिरा हुआ हैं। कभी प्राकृतिक आपदाएं तो कभी सरकारी नीतियों से वह परेशान हो रहा हैं। उसकी फ़सल को उचित मूल्य न मिलना भी आज एक गंभीर समस्या हो चुकी हैं।अच्छे बीजों की उपलब्धता और वितरण की असमानता की समस्या ने भी किसानों का जीना मुश्किल किया है। किसानों के लिए सारे हालात ऐसे हैं कि 'जिंदा कैंसे रहा जाए? 'इस स्थिति में वह फांसी के फंदे को अपनाकर आत्महत्या कर रहा है। अब तक तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्याएं की हैं। किसान आत्महत्या आज चिंता का विषय बना है और वह भी विशेषकर कृषिप्रधान देश में! यह प्रश्न मन में निर्माण होता हैं।

आज के आर्थिक युग में सभी अधिक कमाने की लालसा में अनेकानेक कार्यों में लगे हुए हैं। बहुत से व्यक्ति अनैतिक कार्यों में भी लगे हुए हैं, छीना-झपटी के इस दौर में भी किसान अपने खेत की मेड़ पर बैठा उम्मीद भरी नज़रों से सबकी तरफ देखता है, इस पर भी आश्चर्य की बात यह है कि इसकी दारुण स्थिति की तरफ कोई ध्यान ही नहीं देना चाहता। कभी किसी का ध्यान इस ओर चला भी जाता है तब भी वह अपना मुँह फेर लेता है। सरकार व सामान्यजन की ये हीन भावनाएँ उसे प्रोत्साहन न देकर और अधिक निराश बनाती है। अगर थोड़ी-सी भी सहानुभूति रखी जाए तो वह उसका सुख ही बढ़ाएगी एवं वह अपने काम में पहले की अपेक्षा और अधिक उत्साह से जुट पाएगा। इसी आशय में नंद किशोर आचार्य लिखते हैं–

"बसा नहीं लेता
तुम्हारा दु:ख
कोई दुनिया में अपनी।
सहानुभूति, हाँ,
रख सकता है वह
और वह
उस का सुख बढ़ाती है।"[1]

किसान अपना दु:ख अकेले ही मनाता है, उसके दु:ख में शामिल होने के लिए कोई भी तैयार नहीं है, सब उसकी उपेक्षा करके आगे बढ़ते रहते हैं। वह केवल आशा भरी नज़रों से सबको देखता रह जाता है। दूसरी तरफ़ एक बात यह भी है कि उसने कभी अकेले ख़ुशी मनाना सीखा ही नहीं। वह अपनी खुशी में सभी को शामिल करता है। चंद्रकांत देवताले अपनी कविता 'प्याज़ के विषय में' लिखते हैं–

"प्याज़ के बिना मुश्किल है शाहीभोज
असम्भव है ग़रीब का खाना
प्याज़ की प्रशंसा में
कुछ कहने का यह वक़्त नहीं
पर जो काँख में दबा ले
प्याज़ की नन्हीं सी गाँठ

कोई भी नाज़नीन
तो बहाना नहीं रहे बुखार
प्याज़ रक्खा हो जो जेब में
तो तपते थपेड़ों को सहते
मेहनतकश मज़दूर-किसान
फाँदते जाते हैं देखते-के-देखते
दहकते खेत-मैदान।"[2]

कैलाश वाजपेयी अपनी कविता 'प्रकृति है इस मुकाबले के लिए' में लिखते हैं कि किसान का पूरा जीवन उसकी फसलों, साग-सब्जियों, गेहूँ, धान से अटा-पटा रहता है। उसकी यादें भी इन्हीं सब चीजों से जुड़ी हुई हैं, वह अपने परिवेश से दूर होने की कल्पना तक नहीं कर सकता । किसान गेहूँ के सही उपयोग की इच्छा भी व्यक्त करता है, वह मन ही मन चाहता है कि गेहूँ किसी की भूख मिटाने के काम आए तभी इसकी सार्थकता है। यह किसी शराबी, अय्याश के काम न आए। कैलाश वाजपेयी की कविता 'गेहूँ' में इस मनोरथ को व्यक्त होते हुए देखा जा सकता है-

"ओ मेरे जन्मदाता
मैं हरा गेहूँ दूध भरा
मेरी यह विनती है
जब मैं पक जाऊँ और बने रोटी
यह मेरी काया मैं किसी शराबी अघाए अय्याश की आँत में न जाऊँ
किसी फटेहाल थके पेट की
जलती भट्ठी में स्वाहा होता हुआ
तृप्ति की धुन गुनगुनाऊँ
वही मोक्ष सही मोक्ष होगा
मेरे सुनहरे विकास का।"[3]

लगातार संघर्ष करते हुए, अपनी परिस्थितियों से लड़ते हुए भी किसान को सरकार से किसान हितैषी नीतियों की उम्मीद है। उसे लगता है कि उसकी ये स्थिति एक दिन जरूर बदलेगी। कहा भी गया है कि उम्मीद पर दुनियाँ कायम है, सभी उम्मीद रखते हैं, ऐसे में उसका उम्मीद रखना भी लाजमी है। लगातार उपेक्षित रहते हुए भी किसान को सरकारी योजनाओं एवं नीतियों पर पूरा विश्वास है। उसे लगता है कि इस देश में बिना किसानों के हितों को ध्यान में रखकर न देश चल पाएगा न यहाँ की व्यवस्था, इसलिए भी क्योकिं दोनों एक दूसरे पर बहुत अधिक निर्भर हैं। ये एक दूसरे के सहायक बनकर ही सभी की समृद्धि का सपना साकार हो पाएगा–

"समान्तर ही सही
दोनों पटरियों का
गन्तव्य जब है वही
नहीं चल पायेगी
गाड़ी
एक की
दूसरी के बिना।"[4]

किसान अपनी पिछड़ी स्थिति के कारण उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक, दवाइयाँ, कृषि यंत्र नहीं खरीद सकता। इसी संदर्भ में 'ज्ञानेन्द्रपति' की 'बीज-व्यथा' कविता खाद, उर्वरक, पानी तथा बीज की समस्या को रेखांकित करती है–

"वे बीज
जो बखारी में बंद
कुठलों में सहेजे
हंडियों में जुगोए

दिनोंदिन सूखते देखते थे मेघ-स्वप्न
चिलकती दुपहरिया में
उठेंगी देह की मूँदी आँखों से
उनींदे गेह के अनमुँद गोखों से।"[5]

किसान अपना पूरा जीवन स्वाभिमान के साथ जीता है। परिस्थितियों से लड़ते हुए भी वह अपना जमीर नही बेचता है। वह अपने मान सम्मान के लिए सदैव सजग रहता है। अनेकानेक कष्टों के बावजूद वह अपनी ज़िम्मेदारी बखूबी निभाता है। वह अपने बेटे व बेटी को सीख देता है, कि किसी भी कीमत पर अपना मान-सम्मान की प्रतीक 'पगड़ी' मत झुकाना। अनामिका की 'पगड़ी' कविता में यह भाव स्पष्ट दिखलायी पड़ता है–

"जब भी बाबा जाते बाहर,
धीरे से पगड़ी उठाते,
मैं भी मचल जाती,
फिर आजी समझाती -
'जा तो रही है तू
सिर चढ़ा रखा है तुझको ही
तू ही है बाबा की पगड़ी!"[6]

सालभर मेहनत करने के बाद प्राप्त उपज बेचकर उसका मूल्य लेकर जब किसान अपनी बही खोलकर उसमें आय-व्यय का हिसाब जोड़ता है तब उसकी स्थिति बहुत विचित्र एवं विचलित करने वाली होती है। वह अपनी लागत भी नहीं जोड़ पाता है। यह बात उसे अंदर तक तोड़ देती है। वह बेहद हताशा एवं निराशा से भर जाता है-

"मिलाता हूँ हिसाब हर बार
साल के आख़िर में-
जानते हुए हस्बमामूल
पाया नहीं है कुछ
खोया ही है ख़ुद को-
जान तो लूँ।"[7]

पूरा जीवन तिल-तिल कर दुःख में निकालने वाले किसान से जब कोई उसके जीवन में मिली उपलब्धि के बारे में पूछता है तब उसके हृदय से एक हूक निकलती है एवं वह अपने कँपकँपाते सूखे होठों से कह उठता है-

"कैसे लिखूँ लेकिन
जिया ही नहीं
अपना आत्म मैं ने जब
लिखूँगा जो
कथा होगी वह
तिल-पल मरने की
मेरे।"[8]

आज सर्वत्र एक अराजकता का माहौल बना हुआ है! डर के इस माहौल में किसान दिन-रात काम करता रहता है! आखिर किसके लिए? उससे पूछा जाए कि तुम्हें रात को डर नहीं लगता तब वह कह उठता है—

"दिन ही इतने खूँख्वार
हो चुके हैं
इन दिनों
कि डर जाता रहा रात का।"[9]

भारतीय किसान आर्थिक रूप से आज भी अभिशप्त है। भारत में व्यक्तिगत कृषि जोत कम हो गई है, इसलिए ज़्यादातर किसान खुद के लिए ही अनाज पैदा कर पाते हैं, उनके पास कृषि से आय की संभावना कम हो गई है। जो किसान बेचने के लिए

फसल पैदा करते हैं वे निरंतर नुकसान ही उठा रहे हैं। कुछ बड़े किसान ही सरकारी सुविधाओं का लाभ ले पाते हैं, बाकी मध्यम श्रेणी के किसान कर्ज और अभाव में ही गुजारा करते हैं। उन्हें अपने फसल के उचित मूल्य की जरूरत है। सरकार को ऐसी नीति बनाने की जरूरत है जिसमें बिचौलिया के बजाय किसान की आय में बढ़ोत्तरी हो सके।

इस प्रकार आज किसानों के हालातों एवं हितों के मद्दे नजर नीतियां बनायी जानी आवश्यक है। साथ ही जल,जंगल एवं जीवन का संरक्षण करके एवं इस संबंधी नीतियां भी बनाकर पुनः समृद्धि की ओर लौटा जा सकता है। यह आज के समय की महती आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ लगभग दो तिहाई जनसंख्या कृषि एवं संबंधित कार्यों से जुड़ी हुई है, वहां पर कृषकों की तरफ उपेक्षित दृष्टि से देखा जाना अत्यंत चिंतनीय प्रारम्भ से ही किसान निर्धनता के दुष्चक्र में फँसा हुआ है, पहले जमींदार, महाजन शोषण करते थे, अब सरकारों द्वारा उपेक्षा से देखा जाना उनकी प्रगति में बाधक बना हुआ है। ऋण का दबाव, कर्जे की अधिकता, न्यूनतम समर्थन मूल्य न होना, कृषि नीतियों का सही न होना आदि कारणों से किसान हर वर्ष ओर अधिक ऋणग्रस्तता की तरफ बढ़ता जाता है, एवं अंततः अत्यधिक दबाव के कारण आत्महत्या जैसे कार्य भी कर लेता है। सरकारों को कृषकों हेतु किसान कल्याण की योजनाएँ बनानी चाहिए, उर्वरकों की उपलब्धता, उन्नत बीज, कृषि यंत्रों की उपलब्धता भी सुनिश्चित करनी चाहिए। साथ ही आर्थिक मदद, मुआवजा एवं सब्सिडी प्रदान कर किसानों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सरकारों के साथ ही साहित्य में भी कृषकों को उदासीनता से देखा गया है, स्तरीय कविताओं में किसानों एवं कृषि पर बहुत ही कम रचनाएँ देखने को मिलती है। कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण है। जैसा समाज होता है वैसा आईना दिखाता है परंतु समाज के बड़े भाग अर्थात् किसानों का रूप पूर्णतः सही अर्थों में न दिखाया जाना चिंतनीय है। सच्चे अर्थों में सृजन के महत्व को सिद्ध करने के लिए किसानों की उपयोगिता को झुठलाया नहीं जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. नन्दकिशोर आचार्य-छीलते हुए अपने को, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर प्रथम संस्करण-2013 पृष्ठ क्र.-62
2. चन्द्रकान्त देवताले-पत्थर फेंक रहा हूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2010 पृष्ठ क्र.-89
3. कैलाश वाजपेयी, हवा में हस्ताक्षर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2005 पृष्ठ क्र.-17
4. नन्दकिशोर आचार्य, छीलते हुए अपने को, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण-2013 ई., पृष्ठ क्र.-30
5. ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण- 2004, पृष्ठ क्र-169
6. अनामिका- टोकरी में दिगंत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन-2015, पृष्ठ क्र- 141
7. नन्दकिशोर आचार्य-छीलते हुए अपने को, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण-2013 ई., पृष्ठ क्र.-52
8. वही, पृष्ठ क्र.-92
9. चन्द्रकान्त देवताले- पत्थर फेंक रहा हूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ क्र.-160,161

*****

'आजकल' पत्रिका में प्रकाशित गज़लों में चित्रित किसान विमर्श

श्रीमती मलिका शाकुर पकाली
शोध छात्रा, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
मो. 8180931995
ई मेल: malikapakali66@gmail.com.

प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
तुळजाराम चतुरचंद कॉलेज, बारामती।
मो. 8087303832
ई मेल: sunilbansode16gmail.com

शोध सारांश

हिंदी गज़ल ने पाँच दशकों में जो उपलब्धियाँ हासिल की है, वह बहुत ही सराहनीय है। आज हिंदी गज़ल एक सक्षम, समर्थ एवं संपन्न काव्य विधा है, जिसने लोकप्रियता हासिल की है I हिंदी गजल को जनसामान्य तक पहुँचाने का काम हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं ने किया है, जिसमें 'आजकल' पत्रिका का योगदान बहुत बड़ा है I किसानों के विभिन्न पक्षों को लेकर इस पत्रिका में गज़लें प्रकाशित होती रही है। इन गज़लों के माध्यम से किसानों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पतन को वाणी दी गई है। किसान की आत्महत्याएँ, पर्यावरणीय बदलाव एवं खुशमिज़ाज मौसम का शिकार किसान, खेती की पैदावार की कमी, ऋण का बढ़ता बोझ, पारिवारीक समस्या, शैक्षिक समस्या, स्वास्थ्य की समस्या आदि विषयों को लेकर इन गज़लों का विवेचन प्रस्तुत शोधालेख में किया है।

बीज शब्द : 'आजकल' पत्रिका, किसान, विमर्श, गज़ल, शोषण के रूप, परिवर्तन के स्वर आदि।

प्रस्तावना :

भारत देश की आधी से ज्यादा आबादी खेती पर निर्भर है। खेती करनेवाला वर्ग किसान कहलाता है। किसान के मेहनत से उगाया हुआ अनाज ही आज हम पेटभर खाते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में किसान को 'अन्नदाता' कहा जाता है। विश्व में आज भी खेती के माध्यम से ही फसल उगाई जाती है। हम भारतीय सदियों से 'कृषिप्रधान' समाज है। इसकी विश्वभर में हमेशा से चर्चा रही है। विश्व में जितने भी प्रगतशील राष्ट्र है, वहाँ के लोग भी अनाज ही खाते हैं। यह बात हमारे भारतीय समाज के नवयुवकों से कहना, आज समय की माँग है। इस बात हम सब भूलते जा रहे हैं।

किसान को देश की आर्थिक स्थिति में रीढ़ की हड्डी माना जाता है। लेकिन किसान की स्थिति बद से बदतर हो गई है। आज किसान एक मामूली व्यक्ति के रूप में आँका जाता है। भूमंडलीकरण के दौर में किसान अपनी खेती से दूर जाता नज़र आ रहा है। शहरों का बढ़ता दायरा किसानों के खेती को खत्म कर रहा है। शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण किसानों को उनकी ही जमीन से निकाला जा रहा है, जिससे वे झोपड़पट्टी में अपना गुजारा करने के लिए मजबूर हुए हैं। मुसीबतों का सामना करके कुछ किसान खेती कर भी लेते हैं तो उन्हें फसलों के उचित दाम नहीं मिलते। दलाल और व्यापारी उनकी कड़ी मेहनत से उगाई फसल को निगल के लिए मौके की ताक में रहते हैं। भारत की अधिकांश खेती मौसम पर निर्भर होने के कारण अधिकांश किसानों को बेमौसम बारीश या फिर सूखे का सामना करना पड़ता है। इसकारण उनके फसलों के बुआई एवं कटाई का गणित ही बिगड़ चुका है। फलस्वरूप किसान ऋणग्रस्तता से घिर गया है,परिणामस्वरूप वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है I सन 2025 में सितम्बर तक महाराष्ट्र में लगभग 781 किसानों ने आत्महत्या की हैI सरकारी स्तर पर किसानों के कल्याण हेतु बड़ी-बड़ी योजनाओं की घोषणाएँ होती है, किसान मंत्रालय से वायदे दिए जाते हैं लेकिन ये कल्याणकारी योजनाएँ अंमल में आने तक कई किसान आत्महत्याएँ कर लेते हैं। नई आर्थिक नीतियों के कारण दिन-ब-दिन कल-कारखानें स्थापन हो रहे हैं। इनके लिए भूमि संपादन करने हेतु कई किसानों की ऊपजाउ जमीनों को सरकार कवडियों के भाव देकर व्यापारियों को दे रही है। किसानों के भूमि अधिग्रहण, उनके विस्थापन को लेकर सरकार सिवाय वायदों के कुछ नहीं करती। विस्थापन के नाम पर उन्हें उनके पुश्तैनी जमीनों से बेदखल करके खेती मालिकों को मिलों में मजदूर बनाने का षड्यंत्र सरकार द्वारा धीमी गति से शुरू है। भारतीय किसान की इसी दुर्दशा एवं दयनीय जीवन को 'आजकल' साहित्यिक पत्रिका में गज़ल के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

विषय-विवेचन :

*** 'गज़ल' का अर्थ एवं स्वरूप:**

'गज़ल' यह उर्दू, फारसी, हिंदी तथा अन्य भाषाओं में लिखी जाने वाली लोकप्रिय एवं मार्मिक काव्य विधा है। 'आजकल' इस साहित्यिक पत्रिका में 'गज़ल' को प्रधान विषय बनाकर कई बार विशेषांक निकाले हैं। अगस्त -2020 का अंक

'हिंदी गज़ल के सरोकार' बहुत ही पठनीय एवं लोकप्रिय रहा है। इस विशेषांक में किसान विमर्श को लेकर कई उल्लेखनीय गज़लें प्रकाशित हुई हैं।

'गज़ल' का कोशगत अर्थ है- ''गज़ल - स्त्री, प्रेमिका से वार्तालाप, उर्दू-फारसी कविता का एक प्रकार विशेष, जिसमें प्राय: 5 से 11 शेर होते हैं। सार शेर एक ही रदीफ और काफिए में होते हैं और हर शेर का मजमून अलग होता है, पहला शेर 'मत्लआ' कहलाता है, जिसके दोनों मिस्त्रे सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर मक्तआ होता है, जिसमें शायर अपना उपनाम लाता है। 'गज़ल संग्रह को 'दीवान' एवं संपूर्ण प्रकार के पद्य-संग्रह को 'बयास' कहते हैं।''[1]

गज़ल को समझना आसान नहीं होता। यह उर्दू के अदबभरे शब्दों से मुक्कमल होती है। लेकिन आज खड़ी बोली में भी गज़लें लिखी जा रही है और उसे पंसद भी किया जा रहा है। 'आजकल' पत्रिका में प्रकाशित लेख 'हिंदी गज़ल में युवा गज़लकारों की उपस्थिति' से ज्ञात होता है कि युवा गज़लकार बदलते जीवन एवं सामाजिक परिवर्तन के अनुसार अपनी गज़लें लिख रहे हैं। हिंदी के मशहूर गज़लकार दुष्यंत कुमार, सूर्यभानु गुप्त, हरजीत सिंह इनके गज़लों ने समाज को यह दर्शाया है कि गज़ल सिर्फ प्यार, इश्क-मुश्क, प्रेमीका का विरह आदि से सबसे ऊपर है। ''हिंदी गज़ल में भी युवा गज़लकारों ने अपने समय की जटीलताओं, मानवीय दुर्बलताओं, अकेले होते मनुष्य की वेदना, स्त्री असुरक्षा तथा बाज़ार के छल को अपनी गज़ल में बड़ी कुशलता और प्रखर चेतना के साथ व्यक्त किया है।''[2] इसी नैतिकता को गज़ल के माध्यम से अपनाया जा रहा है। डॉ. नरेश के मतानुसार गज़ल की परिभाषा कुछ इसप्रकार है-

''गज़ल काफिया, रदीफ के बंधन में रहकर एक लयखंड में रचे गए विभिन्न शेरों की माला होती है, जिसका पहला 'मत्लअ' और अंतिम मनका 'मक्तअ' होता है।''[3] यह परिभाषा गज़ल की संरचना को स्पष्ट करती है। वर्तमान समय में समाज की कई विसंगतियों को दर्शाने और उनपर तंज कसने के लिए गज़ल का इस्तेमाल हो रहा है। युवाओं से लेकर बुजर्ग तक गज़ल एवं उसकी नज़ाकत के दिवाने हैं। 'आजकल' पत्रिका में किसान की समस्या एवं उनके दयनीय जीवन को लेकर गज़लों का विवेचन निम्नांकित मुद्दों के आधार करते हैं-

1. फसल के गिरते दाम:

किसान के लिए आमदनी का साधन उसकी फसल ही होती है। यह फसल रब्बी, खरीफ, नगदी आदि मौसमों के अनुसार उगती है। मौसम का मिज़ाज ठिक रहा, सिंचाई का उचित प्रबंधन होने पर ही एक अच्छी पैदावार की उम्मीद की जा सकती है। मगर जब मौसम बिगड़ जाने पर सभी व्यवस्था ढ़ह जाती है और कृषि उत्पन्न बहुत कम हो जाता है। पर्यावरण के बदलाव से भारत के किसान जूझ रहे हैं इससे उनकी आय में भी गिरावट आती है। इससे तंग आकर किसान ने अब गन्ना उगाना शुरू किया है, लेकिन उसमें भी,

''सत्तर साल में भीतो नगरदी फसल नहीं बन पाई ईख,
कब तक गेहूँ, धान उगाते मजबूरी में बो दी ईख।''[4]

हमारा देश आजाद होकर 77 साल पूरे हुए हैं। हमारे देश की आर्थिक सुबत्ता का ज्यादातर मार्ग खेती है। यह खेती द्वारा उगानेवाले धान, गेहूँ, ज्वार, मकई, बाजरा आदि फसलों को नगदी फसल कहते हैं। यह नगदी फसल 3 महीने के आस-पास तैयार होकर बाज़ार में बिकने आती है। इसकारण फसल से होनेवाली आमदनी उतनी अधिक न के बराबर होती है। यहाँ खेती की जमीन में बँटवारा यह भी एक समस्या बन गई है। साथ ही देश में चीनी बनानेवाली मीलों के लिए जरूरी कच्चा माल गन्ना किसान उगा रहा है। यही गन्ना मीलों में जाकर चीनी बनता है तथा देश-विदेश के बाज़ारों में बेचा जाता है। इस फसल से थोड़ी-बहुत आमदनी होती है। मगर यह वार्षिक फसल होने के कारण जमीन की गुणवत्ता कम होती नज़र आ रही है। यह किसान के गन्ना उगाने की प्रक्रिया सरकार देखती है। मगर किसान को गन्ने के बदले नगदी फसल उगाने प्रेरित नहीं करती। साथ ही इस फसल का आर्थिक स्तर भी बढ़ता नहीं है। यह वास्तव किसान अपनी खेती के साथ अनुभव कर रहा है। फिर उसे इस गन्ने कें फसल के लिए भी,

''कैश उगे हैं खेती में क्यों बिके है फसल उधारी में।
हाथ किसान के कुछ नहीं आता है, चीनी है बन जाती ईख।''[5]

किसान को अनेक बैंकों से ऋण लेना पड़ता है। यह खेती बिना पैसे के हो नहीं सकती है। फसल को खाद, जैविक, रासायनिक दवाई, मशक्कत, बिजली, पानी, सिंचाई जैसे काम पैसों के बिना नहीं होते हैं। यह प्रक्रिया पूरी होने के बाद गन्ने की फसल बनकर तैयार होती है। उसे चीनी मीलों द्वारा कम दामों या फिर उधार पर कटवा लेती है । इन गन्नों से चीनी बनकर वह बाज़ार में पहुँच जाती है। लेकिन उसके मेहनत का, अधिकार का पैसा उसे समय पर नहीं मिलता है। जिस किसान ने एक साल

अपने खेती में खून-पसीना एक करके गन्ने की फसल उगाई, उसकी किसानों को गन्ने के बिल के लिए चीनी मीलों के कार्यालयों में बार-बार भूगतान की गुहार लगानी पड़ती है। गन्ने का बिल समय पर न मिलने के कारण किसान और उसके परिवार का आर्थिक पहिया ही ठप्प हो जाता है। चीनी मील मालिकों द्वारा उसे वायदे देकर या फिर चीनी देकर वापस भेजा जाता है। गन्ना किसानों की यह दुर्दशा कमोबेश भारत के अधिकांश राज्यों में दिखाई देती है।

बाज़ार में गन्ने से ज्यादा चीनी का भाव होता है । किसान को चीनी के लिए अपने जेब से ज्यादा पैसे देने पड़ते हैं। विडंबना यह है कि चीनी बनाने के लिए गन्ने की आपूर्ति करनेवाला किसान कंगाल बना है और उसकी मेहनत पर चीनी मील मालिक और व्यापारी सम्राट बनकर बिना मेहनत के मौज कर रहे हैं। इससे किसान की ऋणग्रस्तता बढ़ रही है। जिस गन्ने के बिल की आशा से उसने कर्जा उठाया था वही बिल समय पर न मिलने पर उसपर बैंक के कर्जे का बोझ बढ़ जाता है और वह पेरशान होकर खुदकुशी करने के लिए मजबूर हो जाता है।

2. किसान की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति :

किसान को लेकर सरकारी नीतियाँ बनाने के लिए अधिकांश अनपढ़ लोगों को ही बिठाया गया है जिनका खेती से कोई सीधा रिश्ता ही नहीं है। न उन्होंने खुद खेती की है और न वे किसानों के सुख-दु:ख से परिचित है। केवल एक राजनीतिक अजेंडा को लेकर समाज को उल्लू बनाने वाले नेता ही आज किसानों के मसीहा बने हुए हैं। हमारे राजनेताओं ने भारत के किसानों को हमेशा सत्ता की सीढी की तरह इस्तेमाल किया है। सत्ता पाने तक वे किसानों के मसीहा होने का दिखावा करते हैं और जैसे ही सत्ता मिलती है तो उन्हें दर-किनार किया जाता है। विपक्ष द्वारा सत्ताधारी पक्ष के खिलाफ अनशन, आंदोलन, सत्याग्रह करने के लिए किसानों को उकसाया जाता है और सत्ता परिवर्तन होने के बाद जब विपक्ष सत्ता में आता है तो वह किसान विरोधी बन जाता है। किसानों के फसलों को उचित दामों को विषय बनाकर हमेशा राजनीतिक माहौल गर्म किया जाता है लेकिन इसमें भी राजनेताओं को अपना स्वार्थ छिपा हुआ होता है-

‘‘दो मुँहे नेता ने फिर भी बात किसान की मानी ना,
हमने गुस्से में आकर फिर चौक में आज जलाई ईख।’’[6]

यहाँ किसान को एकत्र कर अनेक नेता किसानों के कल्याण का आश्वासन देते हैं। यह आश्वासन फसल, सिंचाई, ऋण माफी आदि बातों को बढावा देने वाले हैं। इसमें नेताओं के खातों में आकर किसान फसल के दाम बढाने के लिए दंगे-फसाद करते हैं। वह यह नहीं जानते हैं कि वह बहकावे में आकर खुद का ही नुकसान करते हैं। यह किसान को बातों में बहला-फुसलाकर अपना सियासी खेल खेलते हैं। उसे अपने शब्दों के जाल में लपेटते हैं। ताकि किसान होशियार न बन सके-

‘‘शब्दों ने जब भावों से गठजोड़ किया,
कितनी है इस दिल में हलचल क्या बोलूँ।’’[7]

किसान के खेती से निकला माल वह सिर्फ फसल हो जरूरी नहीं है। वह दूध, माँस, मच्छी, फल, फूल आदि सभी किसानी से जुड़े व्यवसायात्मक चीजें हैं। किसान का यह वस्तु बेचने का मूल उद्देश्य अर्थाजन ही है। हमारे यहाँ किसान से कम दाम पर खरीद कर यही चीजें ज्यादा दाम पर बेचनेवाला वर्ग दलाल है। वह यथा संभव किसान को लूटता ही है।उसे अपने और बाज़ार के बीच की खाई देख दु:ख होता है। वह कितना भी प्रयत्न कर अच्छी फसल उगाए लेकिन सरकार के कृषि उत्पन्न बाज़ार समिति द्वारा उसे फसल के उचित दाम नहीं मिलते हैं। यहाँ एक बात याद आती है, सरकार द्वारा तीन नए कृषि कानून-2020 (एम.एस.पी. की माँग) हटाने के लिए आंदोलन हुए थे। यह कानून आंदोलन के बाद खारीज किया गया था। यहाँ किसानों का वही मसला था कि, उनके फसल को डेढ़ प्रतिशत भाव बढाकर मिल जाए।

किसानों की यह प्रासंगिक स्थिति हमें किसानों की दुर्दशा से अवगत कराती है। सदियों से किसान हर युग में शोषण का शिकार बनता आ रहा है। किसान का शोषण किसान समेत उसके परिवार को झँझोड़कर रख देता है। फिर भी उसकी स्थिति में आज तक सुधार नहीं हुआ है। किसानों में भी बड़े किसान, छोटे किसान और भूमिहीन खेत मजदूरों की स्थितियाँ अलग-अलग होती है। बड़े किसान राजनेताओं के करीबी होते हैं, इसलिए वे मुनाफा कमा लेते हैं। लेकिन छोटे किसान और भूमिहीन खेतीहर मजदूरों की हालात दयनीय है-

‘‘डमकते भात की खुशबू उड़ाकर ले गया कोई,
किसानों की कटोरी में पतली दाल उगती है।’’[8]

यह बाज़ार भाव एक षड्यंत्र है जो किसान कभी समझ ही नहीं पाता है। उसे तो बस अपना कार्य नि:स्वार्थ तरीके से करना ही आता है। इसलिए उसके खेत में उगाई फसल उसके घर तक ही नहीं जाती है । धान से भरी बोरियाँ देखता है, छूता है। खुद के लिए कुछ बचा ले ऐसा मन कहता है, मगर परिस्थिति के हाथों वह मजबूर रहता है। सारी फसल बाज़ार में कम दामों पर बेच देता है। यह किसान के घर परिवार की बात है। पैसों के प्रभाव से दरीद्रता तक पहुँचती है। यह किसान को फसल के बीज बुआई से फसल तैयार होने तक अपने घर आने की मेहनत को हम तुच्छ समझते हैं। हमारे घर में थाली में परोसा हुआ अनाज किसी गरीब किसान के मेहनत का नतीजा होता है। यह हम भूलकर उसे फेंक देते हैं। यहा खराब कर देते हैं। तब वह किसान अपने घर पर रूखी-सूखी रोटी पर गुजारा करता है। यह सिर्फ भारत के किसान की व्यथा नहीं है। संपूर्ण विश्व में यह हर किसान की दशा है। हमारा देश किसान विरोधी नीतियाँ चलाकर किसान को बद से बदतर जीवन दे रहा है। किसानों की मेहनत को अनदेखा करके भारत जैसा कृषिप्रधान देश अपने पैरों पर ही कुल्हाडी चला रहा है। दुनिया का कोई भी देश कितनी भी तरक्की क्यों न कर ले लेकिन खाने की थाली में चावल और रोटी किसान की मेहनत और खेती से ही आने वाली है। AI के जमाने में किसान और उसकी खेती को भी आधुनिक बनाने की चर्चा हो रही है किसानों को उपेक्षित रखा जा रहा है। किसी भी युग में किसान श्रेष्ठ था और हमेशा रहेगा। हमें उसके मूल्य को जानना होगा, वरना भविष्य में हमें भूखे मरने की नौबत आ सकती है।

निष्कर्ष-

किसान को विश्व में अनेक स्तर पर शोषण का सामना करना पड़ता है। किसान केवल पर्यावरणीय नहीं, अपितु सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों का भी शिकार होता नज़र आता है। मूलत: भारत जैसे कृषिप्रधान देश में किसान देश की आर्थिक धमनियों की तरह काम करता है। आज हम जिस विकास या विश्वगुरू बनने का सपना देख रहे हैं, उसकी नींव मूलत: भारतीय किसान और खेती पर निर्भर है। देश की इतनी बड़ी आबादी के भोजन की व्यवस्था करनेवाले किसान पर आज सरकार की गलत नीतियों और समाज की असंवेदनशीलता के कारण भूखे मरने की नौबत आई है। किसानों को पर्यावरण संकट, सिंचाई का प्रबंधन, बीज, खाद, कीटनाशक, खेती से जुड़े हुए काम आदि पर बहुत लागत लगानी पड़ती है। समय पड़ने पर उसे अपना घर तक गिरवी रखना पड़ता है। इतनी जद्दोजहद के बाद भी उसकी फसल को उचित भाव नहीं दिया जाता। किसानों के जीवन की इन विसंगतियों को 'आजकल' पत्रिका के अगस्त -2020 के गज़ल विशेषांक में उद्घाटित किया गया है।वर्तमान में किसानोपयोगी कानून बनाने की आवश्यकता है,उनकी फसल को उचित एवं हमी दाम मिले, प्राकृतिक आपदाओं से राहत कार्य के सारे इंतजाम किये जाये, फसल बीमा योजना का पैसा समय पर मिले,निजी साहुकारो पर अंकुश लगाये जाये और भारत जैसे 'कृषीप्रधान' देश में किसान को प्राथमिकता दी जाये I समय रहते सभी को किसानों को उचित सम्मान एवं न्याय देना होगा, वरना सदियों से फलती-फूलती रही भारतीय कृषि-संस्कृति नष्ट हो जाएगी।

संदर्भ :

1. संपा. विनय कुमार अवस्थी, जदीद उर्दू हिंदी कोश (लगुत), भुवन वाणी ट्रस्ट-लखनऊ, प्र.सं.1997, पृ.क्र.279
2. संपा. फरहत परवीन, 'आजकल' (मासिक पत्रिका), अंक-अगस्त-2020, ज्ञानप्रकाश विवेक- हिंदी गज़ल में युवा गज़लकारों की उपस्थिति', पृ.क्र. 21
3. डॉ. नरेश, हिंदी गज़ल दशा और दिशा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2004, पृ.क्र. 17
4. संपा. फरहत परवीन, 'आजकल' (मासिक पत्रिका), अंक-अगस्त-2020, गज़लकार- बल्ली सिंह, बीमा, पृ.क्र. 40
5. वही, पृ.क्र. 40
6. वही, पृ.क्र. 40
7. वही, पृ.क्र. 40
8. वही, पृ.क्र. 40

*****

लोक साहित्य की प्रांसगिकता

प्रा. डॉ. उत्तम ओंकार येवले
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, कोल्हार
तहसील, राहाता, जिला, अहिल्यानगर।
भ्रमण ध्वनि, 9822423972
Email- yewaleuttam71@gmail.com.

शोध आलेख सारांश -

लोक साहित्य जन सामान्य की सामूहिक चेतना, अनुभव और सांस्कृतिक परंपराओं की अभिव्यक्ति है। यह साहित्य मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होता आ रहा है। वह जन सामान्य के जीवन से उपजा हुआ साहित्य है। प्रस्तुत शोधपत्र में लोक साहित्य के अर्थ, स्वरूप, विशेषत: मानवीय मूल्य तथा सामाजिक, सांस्कृतिक शैक्षिक, और समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण किया है। इस वैश्वीकरण और तकनीकी युग में लोक साहित्य के समक्ष उपस्थित चुनौतियों तथा उसके संरक्षण की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है। लोक साहित्य अतीत की धरोहर ही नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य का पथ प्रदर्शक है। यह समाज को उसकी जड़ों से जोड़ता है और मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करता है। अतः लोग साहित्य का संरक्षण और अध्ययन हमारी सांस्कृतिक जिम्मेदारी है।यह अध्ययन सिद्ध करता है कि लोक साहित्य आज भी समाज को मूल्य बोध, सांस्कृतिक पहचान और मानवीय संवेदना प्रदान करने में अत्यंत प्रासंगिक है।

बीजशब्द –

लोक साहित्य, लोक संस्कृति, परंपरा, प्रासंगिकता, मौखिक साहित्य।

प्रस्तावना-

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार लोक साहित्य समाज की आत्मा है। जब मानव सभ्यता का विकास प्रारंभिक अवस्था में था तब लिखित साहित्य का अभाव था। उस समय लोकगीत, लोक कथाओं, लोक गाथाओं और कहावतें मुहावरों के माध्यम से ही समाज अपने अनुभवों और ज्ञान को सुरक्षित रखता था। लोक साहित्य जन सामान्य के जीवन संघर्ष, आस्था और भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। आधुनिक युग में जहां तकनीक और भौतिकता का वर्चस्व बढ़ रहा है वही लोक साहित्य मानवीय मूल्य और सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखने का कार्य कर रहा है। लोक साहित्य मानव सभ्यता का वह मौलिक और सहज साहित्य है जो जन सामान्य के जीवन, अनुभव, परंपराओं, विश्वास, संघर्ष और आकांक्षाओं से जन्म लेता है। यह साहित्य किसी एक लेखक की रचना न होकर सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति होता है। आधुनिक युग में जब तकनीक और वैश्वीकरण ने मानव जीवन शैली को तीव्रता से बदला तब लोक साहित्य की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

शोध आलेख का विश्लेषण-

लोक साहित्य शब्द दो शब्दों के योग से गठित हुआ है, लोक और साहित्य। इसका अभिप्राय यह लिया जा सकता है कि लोग का साहित्य अथवा लोक जीवन में प्रयुक्त साहित्य, जिसका सृजन स्वयं लोग द्वारा हुआ हो। इस प्रकार लोक द्वारा सृजित और प्रयुक्त साहित्य लोक साहित्य कहलाया गया। इस संदर्भ में डॉ. प्रवीण अंसारी कहते हैं-"सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा- निराशा, हर्ष- विषाद, जीवन- मरण, लाभ- हानि, सुख- दुख आदि अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसी को लोक साहित्य कहते हैं।"1 वास्तव में लोक साहित्य यह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी एक व्यक्ति ने गढा हो पर आज उसे सामान्य लोग समूह अपना ही मानता है। गाते समय वह उसे तोड़ सकता है, मरोड़ सकता है और अपनी तरफ से कुछ जोड़ भी सकता है।

लोक साहित्य का अर्थ और परिभाषा पर विचार विमर्श करने के पश्चात यह दिखाई देता है कि लोक साहित्य का अर्थ उस साहित्य से है जो लोग द्वारा लोग के लिए और लोग की भाषा में रचा गया हो। यह किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर समाज की सामूहिक चेतना का परिणाम होता है।

प्रासंगिकता का अर्थ और परिभाषा-

प्रासंगिकता शब्द का अर्थ नालंदा विशाल शब्दसागर मे इस प्रकार दिया है- "प्रासंगिक (वि.) (सौ.) 1 प्रसंग का। प्रसंग संबंधी । 2) प्रसंग द्वारा प्राप्त। 3) किसी प्रसंग में आकस्मिक रूप से समझ आने वाला (व्यय आदि)। 4)

अकालिक। अनुषंगिक। नैमित्तिक।"२

इस प्रकार प्रासंगिकता शब्द का अर्थ है- "किसी विषय, विचार, घटना या वस्तु का वर्तमान समय, परिस्थिति और संदर्भ में उपयोगी या महत्वपूर्ण होना।" 3 सरल शब्दों में कहे तो, जो बात या वस्तु आज के समय में काम की हो, जिसकी आवश्यकता हो और जो हमारे जीवन या समाज से जुड़ी हुई हो वह प्रासंगिक कहलाती है। इस तरह किसी विषय विचार या रचना का अपने समय, समाज और परिस्थितियों के अनुरूप उपयोगी, सार्थक एवं प्रभावी होना ही उसकी प्रासंगिकता कहलाता है। लोक साहित्य समाज, संस्कृति और परंपराओं को समझने में सहायक है।

लोक साहित्य की कहानियां लोक मानस की घटनाएं होती है। जो कोरी कल्पना जन्य होती है और आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त करती है। लोक साहित्य के लोकगीत लोक मानस के लिए गाए गए गीत होते हैं। जीवन के जितने पहलू है, उतने पहलू पर लोकगीत लिखे गए हैं। लोक साहित्य लोगों का साहित्य है। समाज में घटित समस्त घटनाओं का चिंतन लोक साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। लोक साहित्य का मूल उद्देश्य एक सभ्य समाज का निर्माण करना होता है। समाज की बुराइयां, विसंगतियां समाप्त करना और जाति, धर्म में विभाजित समाज को संगठित एवं संस्कृति करने के लिए लोक साहित्य के विविध रूपों के द्वारा साहित्य निर्माण हुआ है।

लोक संस्कृति का ही अनिवार्य अंग माने जाने वाला लोक साहित्य का निर्माण आदिम युग से आज तक परंपरागत ढंग से हो रहा है। शायद इसलिए ही इसे लोक ज्ञान गंगा कहा जाता है। लोक साहित्य अतीत कालीन जीवन के प्रभावात्मक अंश आज के आधुनिक युग में भी जैसे के वैसे दृष्टिगोचर होते हैं। संक्षेप में कहां जाए तो लोक साहित्य लोक जीवन से ही ऊर्जावान होकर लोक मानस अर्थात मानव समुदाय के चेतना के स्रोत का आधार बन चुका है। लोक साहित्य में लोक मानस की कृति युक्त व्यवहार का दर्शन होता है। लोगों का जीवन, उसकी यथार्थता, प्रकृति, लोगों की सर्जन शीलता तथा मानव जीवन की चैतन्यता लोक साहित्य से ही प्रकट होती है। इसीलिए इसे लोक ज्ञान गंगा भी कहा जाता है। साहित्य सर्व समावेशक है जो अपने साथ-साथ समाज मान्यताएं, इतिहास, धर्म, संस्कृति,भाषा आदि को अपने आप में अंतर्गत करते चलता है। आज अगर वर्तमान कालीन मानव जीवन पद्धति के ऊर्जा स्रोत को ढूंढना है, मानवी जीवन की सादगी, आस्था, लोक चेतना, लोक मूल्यों को ढूंढना है और उसका अध्ययन करना है, तो लोक साहित्य का अध्ययन और भी अनिवार्य हो जाता है। लोक साहित्य लोक संस्कृति के साथ-साथ सामाजिक परंपराओं तथा मान्यताओं का दर्पण माना जाता है। इसलिए समाज, मानव संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से लोक साहित्य का अन्य साधारण महत्व है। हमारी संस्कृति प्राचीन काल से मानव जीवन की चेतना का स्रोत मानी जाती है। इसी संस्कृति को अगर आज के वर्तमान काल में भी जीवित रखना है तो लोक साहित्य का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। व्हाट्सएप, ईमेल, फेसबुक इंस्टाग्राम, विविध इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के कारण हम अपनी लोकमान्यताओं को भूलते जा रहे हैं। हमारी संवेदनायक क्षिन होती जा रही है। अलगाववादी प्रवृत्ति बढ़ रही है। परिणाम स्वरूप आदमी और उसका आदमीपन स्वतंत्र हो रहा है।

लोकजीवन की मान्यताओं ने हमारी सामाजिक परंपराओं का संजीव रखने का श्रेष्ठतम कार्य इस आधुनिक युग में भी किया है। लोकप्रचलित विश्वास, लोक कथा, लोकगीत, लोक नृत्य, लोकोक्तियां, कहावतें, मुहावरे, विदाई गीत, विविध संस्कार पर्व, उत्सव, त्यौहार के गीत मानव समुदाय के मन को करो ताजा करने का काम करते हैं। इसलिए आज के इस आपाधात्री के युग में भी लोक साहित्य लोक संस्कृति की सामाजिक मान्यताएं उतनी ही आवश्यक है, जितनी मनुष्य को रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता है। मनुष्य को अगर अपनी मानवीयता और इंसानियत्ता आदमीपन के साथ जीवित रखना है, तो उसे जीवन की सामाजिक परंपराओं को संजोगकर रखना होगा। उन्हें अपने जीवन का हिस्सा बनना ही होगा।

लोक साहित्य और सांस्कृतिक पहचान-

लोक साहित्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान का मूल आधार होता है इसमें उसे समाज का जीवन शैली खानपान व वेशभूषा रीति रिवाज पर्व त्यौहार लोक विश्वास और मूल्य परिलक्षित होते हैं भारत जैसे बहुभाषी और बहु सांस्कृतिक देश में लोक साहित्य विविधता में एकता का सशक्त उदा. प्रस्तुत करता है राजस्थानी लोकगीतों में वीरता और शौर्य भोजपुरी गीतों में प्रेम और बिरहा मराठी अभंग में भक्ति और सामाजिक चेतना मध्य प्रदेश के आदिवासियों में नारी की महत्ता यह सभी लोक साहित्य के माध्यम से क्षेत्रीय संस्कृति को जीवंत बनाए रखते हैं।

लोक साहित्य और सामाजिक चेतना-

लोक साहित्य समाज का दर्पण होता है यह सामाजिक विषमताओं शोषण अन्याय वर्ग भेद और लैंगिक असमानताओं को साज ढंग से प्रस्तुत करता है अनेक लोक कथाएं और लोकगीत समाज सुधार की भावना से ओतप्रोस्ट है लोग साहित्य ने सदैव जान पक्षधर की भूमिका निभाई है यह शासक वर्ग के बजे श्रमिक किसान स्त्री वंचित दलित पिछड़ा आदिवासी वर्ग की आवाज बनता है इसलिए यह सामाजिक चेतना को जागृत करने का प्रभावी माध्यम है।

लोक साहित्य और सामाजिक मूल्य-

लोक साहित्य नैतिक शिक्षा का सशक्त माध्यम है लोक कथा और कहावतें के माध्यम से सत्य ईमानदारी परिश्रम करुणा सहयोग और सह अस्तित्व जैसे मानवीय मूल्यों का प्रचार और प्रचार करता है बाल्यावस्था में सुनी गई लोक कथाएं व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है यह कथाएं मनोरंजन के साथ-साथ जीवन उपयोगी संदेश भी देती है।

लोक साहित्य और इतिहास-

लोक साहित्य ऐतिहासिक चेतना का भी महत्वपूर्ण स्रोत है अनेक लोक कथाएं वीरगाथाएं इतिहास की अंकी घटनाओं को सुरक्षित रखती है यह रचनाएं शासकीय इतिहास से अलग जैन इतिहास निर्माण करती है लोक साहित्य में वर्णित युद्ध सामाजिक आंदोलन नायक नायक आए और जन संघर्ष इतिहासकारों के लिए मूल्यवान सामग्री प्रदान करते हैं इतिहास के कारण ही उसे समय के संस्कृति लोक जीवन का पता हमें मिलता है।

लोक साहित्य और भाषा-

लोक साहित्य भाषा के संरक्षण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है यह बोलिए ऊपर बोलियां को जीवित रखना है आज जब मानक भाषाओं का दबाव बढ़ रहा है तब लोग साहित्य भाषा ही विविधता की रक्षा कर रहा है मुहावरे कहावतें और लोकगीत भाषाओं को जीवंत रस पूर्ण और प्रभावशाली बनाते हैं साहित्यिक भाषा को भी लोक साहित्य से ऊर्जा प्राप्त होती है।

लोक साहित्य और आधुनिक संदर्भ-

आधुनिक युग में लोक साहित्य की प्रासंगिकता काम नहीं हुई है बल्कि नए रूपों में और भी बढ़ गई है सिनेमा टेलीविजन विज्ञापन सोशल मीडिया में लोक तत्वों का व्यापक प्रयोग हो रहा है आधुनिक साहित्यकार और रचनाकार लोक साहित्य से प्रेरणा लेकर नई रचनाएं कर रहे हैं यह परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करता है आखिर आखिर साहित्य का उद्देश्य है शिक्षित लोग अशिक्षित लोगों तक पहुंचे और उनका दुख दर्द जाने। इन लोगों तक पहुंचाने का एकमात्र माध्यम है भाषा। लोक साहित्य और शिक्षा-

शिक्षा के क्षेत्र में को साहित्य का महत्व अत्यधिक है यह बालको और युवाओं में सांस्कृतिक चेतना, नैतिक मूल्य और सामाजिक संवेदनशीलता का विकास करता है पाठ्यक्रमों में लोक साहित्य शामिल करने से विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति और समाज को समझने का अवसर मिलता है यह शिक्षा को अधिक जाप योगी और रोचक बनता है।

लोक साहित्य और राष्ट्रीय एकता-

लोक साहित्य विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक विशेषताओं को उजागर करते हुए राष्ट्रीय एकता को करता है अलग-अलग भाषाओं और परंपराओं के बावजूद लोग साहित्य में मानवीय भावनाओं की सामान्य दिखाई देती है यह विविधता में एकता की भावना पैदा करता है उसे मजबूत करने के लिए जोर देता है और सांस्कृतिक समरसता पर जोर देकर उसे बढ़ावा देता है।

लोक साहित्य संरक्षण की आवश्यकता-

आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के तकनीकी विकास के कारण लोक साहित्य के अनेक रूप लुप्त होते के कगार पर है इसलिए इसके संरक्षण और संकलन की आवश्यकता है लोग को कलाकारों कथा वाचक को और जिकन को प्रोत्साहन देना शोध कार्य करना और लोक साहित्य को डिजिटल माध्यम से सुरक्षित करना समय की मांग है

निष्कर्ष-

किसी भी देश का लोक साहित्य उसे देश की आम जनता की भावना, संस्कृति दुख - दर्द, आदि भावनाओं का दर्पण होता है। समाज में जो भी अच्छा- बुरा, सुंदर और सुंदर हो रहा है उसके प्रति साधारण जनमानस की भावनाएं लोक साहित्य में प्रकट होती है। लोक साहित्य से ही जनमानस की आशा- निराशा, पीड़ा- संवेदना, चिंताएं- कष्ट और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण देखना संभव होता है। आज की आधुनिक यंत्र व जीवन में भी लोक साहित्य लोकजीवन प्रचलित लोकमान्यताएं सामाजिक परंपरा इनका मूल्यात्मक योगदान है उनकी प्रासंगिकता का मूल्य पहचान कर आज हम सजग हुए तो सही अर्थ ऑन में आदमी को आदमी पान मिलेगा और समूची मानव जाति एक सूत्र में बंद कर ऊर्जावान होगी क्योंकि लोकगीत लोक कथा लोक संस्कृति लोक साहित्य हमारे मानव जीवन समाज की सांस्कृतिक धरोहर है। लोक साहित्य का संरक्षण और संवर्धन का करना हम सभी का उत्तरदायित्व है

लोक साहित्य केवल अतीत की धरोहर ही नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य की भी आवश्यकता है यह समाज की आत्मा संस्कृति की पहचान और मानवीय मूल्यों का संवाहक है आज के वैश्वीकृत और भौतिकवादी युग में लोक साहित्य हमें मानवीय संवेदना सामाजिक जिम्मेदारी और सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ता है इसलिए लोक साहित्य की प्रासंगिकता न केवल बनी हुई है बल्कि निरंतर बढ़ती जा रही है। संक्षेप में लोक साहित्य समाज,संस्कृति और परंपराओं को समझने में सहायक है। इसलिए उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

संदर्भ सूची

1) डॉ प्रवीण अंसारी लोक साहित्य के विविध आयाम पृ. संख्या 04, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण 2016
2) संपादक मंडल - आदिश कुमार जैन, नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ. संख्या,919,आदिश बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली संस्करण 1997
3) वहीं पृ.संख्या,919

*****

ग़ज़ल में सामाजिक परिदृश्य : राहत इंदौरी के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. किरण सदानंद भोसले
हिंदी विभाग अध्यक्ष
यशवंतराव चव्हाण (के.एम.सी.)
कॉलेज, कोल्हापुर
kiranbhosale1610@gmail.com
9527081615

सारांश :-

ग़ज़ल हिंदी साहित्य की बहुत लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित विधा है। प्राचीन काल में केवल श्रृंगार रस से सरबोर यह विधा आधुनिक काल तक आते आते सामाजिक बन गयी है। जिसने सामाजिक चित्रण और वर्णन के साथ साथ सामाजिक परिवर्तन की चेतना भी निर्माण की है। राहत इंदौरी एक सामाजिक दृष्टि रखने वाले ग़ज़लकार हैं। जिनकी ग़ज़लों में समाज के हर क्षेत्र एवं अंग का चित्रण मिलता है। पारिवारिक जीवन की समस्याओं के साथ सामाजिक समस्याओं पर भी कवि ने अपनी अनूठी शैली में ग़ज़लें लिखी है। रिश्तों में आयी दरारे, टूटते परिवार, समाज में फैले अंधविश्वास, आडंबर, अनैतिकता, अनेक प्रकार के भेद आदि पर उन्होंने तीखे तंज कसे हैं। यह समाज का दयनीय, शोचनीय तथा भयंकर रूप उन्होंने उजागर किया है। जो भारत का वास्तविक सामाजिक परिदृश्य सामने रखता है। केवल समस्याओं का वर्णन कर कवि रुकता नहीं बल्कि उसके लिए जिम्मेदार समाज का हर एक व्यक्ति को वह आत्म परिक्षण करने के लिए मजबूर करता है। साथ ही इन समस्याओं से उभरने के लिए समाज को प्रेरित करता है। प्रयत्न वादी बनकर अपने दुःख दर्द मिटाकर सामाजिक परिवर्तन करने के लिए लोगों में चेतना भरता है। यहीं उनकी सामाजिक दृष्टि है। जो देश का सामाजिक परिदृश्य में परिवर्तन की चाह रखती है।

बीज शब्द :- सामाजिक परिदृश्य अर्थात् समाज का वास्तविक चित्रण एवं वर्णन।

भारत में साहित्यिक विधा के रूप में ग़ज़ल की विकास यात्रा 1000 वर्षों की मानी जाती है। जिसमें 'माशूक़ से बातचीत' इस स्वरुप से वह अब 'सभी मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति करने वाली' प्रमुख विधा के रूप में स्थापित हुई है। इस यात्रा को हम व्यष्टि से समष्टि तक पहुँचना कह सकते हैं। यहीं ग़ज़ल विधा का विकास क्रम भी है। आधुनिक काल में तो गज़ल के इसी भाव पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। जिसमें सामाजिक समस्याओं तथा मानवीय समाज से जुड़ी अन्य समस्याओं पर विचार एवं भावना अभिव्यक्त की गयी हो। अतः आज ग़ज़ल एक सामाजिक परिदृश्य प्रकट करने वाली विधा बन गयी है। जिसमें समाज के प्रति हर संभव संवेदनशीलता के साथ सामाजिक, आर्थिक, धर्मिक एवं राजनीतिक समस्याओं के प्रति चिंता एवं विद्रोह मूल स्वर बनकर उभर आता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य और फिल्म जगत् में राहत इंदौरी का नाम बहुत लोकप्रिय और प्रतिष्ठित है। जिन्होंने ग़ज़लों और गीतों की रचना कर अपनी अनूठी शैली एवं प्रस्तुति से हिंदी जगत् को मोहित किया। उनकी ग़ज़लों में व्यक्तिगत जीवन की अभिव्यक्ति के साथ सभी तरह सामजिक परिदृश्य की भी प्रकटीकरण हुआ है। समाज का विशेष अंग परिवार होता है। हर परिवार अपने हित और सुख के लिए बहुत मेहनत करता है एवं दुःख दर्द का सामना भी करता है। लेकिन कभी कभी इस विचार से उनमें स्वार्थ परकता आ जाती है। और वह परिवार अपने घर तक सिमित सोच रखने लगता है। जिससे सामाजिक व्यवस्था को हानि होती है। समाज में रहकर समाज के हित-सुख एवं दुःख दर्द बारे में वह कोई सरोकार नहीं रखता। तो ऐसे परिवारों में सामाजिक भावना जागृत करना अत्यावश्यक हो जाता है। राहत इंदौरी ऐसे लोगों को चेतावनी देते हुए लिखते हैं -

"यूँ ही नहीं रहता है उजाला बस्ती में
चाँद बुझे तो घर भी जलाना पडता है।"[1]

समाज का अस्तित्व बना रहे इसलिए यह चेतावनी यहाँ दी है। मनुष्य में सामाजिक भावना बनी रहेगी तो ही मानवीय समाज का अस्तित्व टीक सकता है। लेकिन फिर भी इन लोगों पर असर नहीं होता। उनको यह बातें समझ में नहीं आती। तब कवि तडपकर कहता है -

"है मेरे चारों तरफ़ भीड़ गूँगे-बहरों की
किसे ख़तीब (उपदेशक) बनाऊँ किसे ख़िताब करूँ"[2]

समाज को जागृत करते समय कवि के सामनर यह भी प्रश्न उठता है कि यह लोग सुनते क्यों नहीं। गूँगे बहरे की तरह इन पर किसी बात का असर ही नहीं पड़ता। अब किसे उपदेशक बनाऊँ और किसे उपदेश करूँ? फिर भी कवि उम्मीद नहीं छोड़ता। वह समाज के इस हातल के कारण ढूँढता है। उसे वह कारण पता चलता है। तो कवि इस समाज के सामने उन्हें बेनकाब करता है।

"ये लोग पाँव नहीं ज़हन से अपाहिज है
उधर चलेंगे जिधर रहनुमा चलाता है"[3]

समाज के रहनुमाओं ने लोगों को दिमाग से अपाहिज कर रखा है। वह उधर ही चल पडते हैं जिधर रहनुमा चलने को कहता है। समाज की इस दयनीय स्थिति को उजागर करते हुए उसके जिम्मेदार नेताओं का पर्दाफाश भी यहाँ किया है। इन नेताओं के हर हथखंडे और षड्यंत्र को कवि अच्छी तरह से जान चुका है। इस लिए उनके हर चाल से समाज को बचने की सलाह देते हुए जागृत रखना चाहता है। इस प्रकार किसी को भी अपना रहनुमा मानकर उसके पीछे चलते जा रहे लोगों को वह बताते हैं -

"ये शहर वो है जहाँ राक्षस भी रहते हैं
हर इक तराशे हुए बुत को देवता न कहो"[4]

समाज में अच्छे और बुरे लोग भी होते हैं हर एक को देवता समान मानना उनके पीछे चलना बहुत हानिकारक है। इसलिए कवि यहाँ समाज का वास्तविक परिदृश्य सामने रखते हैं।

समाज में आजकल पारिवार टूट रहे हैं। यह रिश्तों का बिख़राव बहुत दुख दायी है। भाई भाई से संपर्क में नहीं। कवि कहते हैं कि ऐसे लोग जो महोबत का वास्ता देते हैं वो अपने भाई को ईद में भी गले लगाने नहीं मिलते। साथ ही दोस्तों में भी कोई संपर्क नहीं रहा। आज तो सोशल मीडिया के जमाने में तो दोस्तों से मिलना भी नहीं होता तो वह प्रेम और दोस्ताना निभाने की नौबत ही आती। ऐसे दोस्तों के बारे में कवि कहते हैं कि दोस्त महोबत, प्रेम या दोस्ती निभाने के लिए आये या ना आये कोई जख्म लगाने आये लेकिन आये तो सही। समाज के हर रिश्ते में आयी दरारों का कारण भी हम लोग है। जिन्होंने रिश्ते निभाने की अहमियत नहीं समझी। लोगों की और सामाजिक जीवन की कीमत नहीं जानी। इसीलिए कवि दुःख से कहते हैं -

"रिश्तों के, मरासिम के, मुहब्बत के, वफ़ा के
कुछ शहर तो ख़ुद हमने ही वीरान किए हैं"5

ऐसे वीरान जिंदगी के लिए हम लोग ही जिम्मेदार हैं। तो उसे फिर उजाले से भरने के लिए हम लोगों को ही प्रयास करने होंगे। कवि कहते हैं कि हो लाख जुल्म मगर बद्दुआ नहीं देंगे। हमें तो सिर्फ़ जगाना हैं सोने वालों को। इस तरह अपने दुःख दर्द दूर करने के लिए हमको ही कुछ करना है। यह प्रेरणा देते हुए कवि लिखते हैं -

"न हमसफ़र न किसी हमनशीं से निकलेगा
हमारे पाँव का काँटा हमीं से निकलेगा"6

इस प्रकार समाज व्यवस्था में आये खालीपन, खोखलापन और उससे प्रभावित मनुष्य जीवन के सारे क्षेत्रों का दयनीय चित्रण राहत इंदौरी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामने रखतें हैं। वह इस स्थिति के लिए जिम्मेदार समाज में रहने वाले हर एक व्यक्ति को मानते हैं। साथ ही इसे बदलने की जिम्मेदारी भी उन्ही पर सौंपते हैं। क्योंकि कोई और आकार यह स्थिति बदलेगा ऐसी उम्मीद करके हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना कायरता होगी। इसलिए कवि समाज के हर व्यक्ति में प्रयत्न वादी प्रवृत्ति निर्माण करना चाहता है। यह विचार इंदौरी की ग़ज़लों में बारबार उभरता है। जो देश के सामाजिक परिदृश्य को केवल चित्रित कर उजागर करके ही नहीं रुकता बल्कि उसमें परिवर्तन की चाह भी करता है।

संदर्भ :-

1. इंदौरी राहत, दो कदम और सही, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, उत्तर प्रदेश, 8 वीं आवृत्ति 2022, पृष्ठ क्र. 26.
2. वहीं पृष्ठ क्र. 49.
3. वहीं पृष्ठ क्र. 45.
4. इंदौरी राहत, मेरे बाद, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, छठा संस्करण 2022, पृष्ठ क्र. 22.
5. इंदौरी राहत, दो कदम और सही, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, उत्तर प्रदेश, 8 वीं आवृत्ति 2022, पृष्ठ क्र.185.
6. इंदौरी राहत, मेरे बाद, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, छठा संस्करण 2022, पृष्ठ क्र. 27.

*****

"इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी लोकगीतों का अध्ययन"

प्रा.रविदास एस पाडवी
हिंदी विभाग,
सहयाक प्राध्यापक,
महावीर महाविदयालय, कोल्हापुर
मो.न. 8275250020
ravidasp@rediffmail.com

सारांश : लोकगीत भारतीय साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्राचीन परंपरा है। यह केवल संगीत या मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि समाज, संस्कृति, इतिहास और जीवन का दर्पण भी है। भारतीय आदिवासी समाज में लोकगीत विशेष महत्व रखते हैं। आदिवासी समाज के लोकगीत सामाजिक, धार्मिक,और सांस्कृतिक जीवन के सभी पहलुओं में गहरे पैठे हुए हैं। आदिवासी लोकगीत मुख्यत: मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित होते रहे हैं। इस लोकगीत में आदिवासी समुदाय के जीवन की दैनिक घटनाओं, सामाजिक मूल्य, धार्मिक आस्थाएँ, सुख-दुःख,आशा-अपेक्षाएँ, संघर्ष और प्राकृतिक परिवेश की अभिव्यक्ति करते हैं। इक्कीसवीं सदी के हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीतों का समावेश न केवल साहित्यिक सौंदर्य बढ़ाता है, बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक संरक्षण और आदिवासी जीवन की यथार्थ छवि प्रस्तुत करते हैं।

बीजशब्द : आदिवासी, लोकगीत, समाज, समुदाय, संस्कृति, मौखिकता, परंपरा

प्रस्तावना : लोकगीत भारतीय आदिवासी समाज की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न अंग हैं। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि आदिवासी जीवन के अनुभवों, आस्थाओं, संघर्षों और सामाजिक मूल्यों का जीवंत दस्तावेज भी हैं।आदिवासी समाज में लोकगीत मौखिकता परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित होते आए हैं और यह उनके सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

इक्कीसवीं सदी के हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। आधुनिक हिंदी आदिवासी उपन्यासकारों ने लोकगीत को केवल पारंपरिक स्वरूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे कथानक, पात्रों के भाव और सामाजिक चेतना को उजागर करने के लिए सृजनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। लोकगीत पात्रों के मनोभाव, आदिवासी समुदाय की एकता और सामाजिक संघर्ष को अभिव्यक्त करने में सहायक हैं।

विवेचन : तेजिंदर का उपन्यास 'काला पादरी' में आदिवासी जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक संघर्षों के चित्रण के साथ-साथ लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास में पात्र उत्सव और श्रम के समय लोकगीत गाते हैं। यह लोकगीत फसल काटने या शादी के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीत न केवल उत्सव-त्यौहार की भावना को प्रदर्शित करते हैं, बल्कि पात्रों की भावनाओं और सामाजिक समरसता को भी उजागर करते हैं।

"धरती मां के अंगना में, हम बीज बोएंगे,
पसीने की धार से, सुख-खेत सजाएंगे।"[1]

लोकगीत पात्रों की भावनाओं और कथानक के विकास में योगदान देते हैं। पात्रों के गीत उनकी आशाएँ, पीड़ा और उत्साह को दर्शाते हैं, जिससे पाठक आदिवासी जीवन की यथार्थता अनुभव कर पाता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबुतरा आदिवासी जनजाति के लोगों के लोकगीतों का चित्रण किया गया है। यह समुदाय अत्यंत गरीब है। चोरी, डकैती करना, शरब बनाकर बेचना जो इनका रोजाना जीवन का क्रम है। परंतु सुख-दुःख, पर्व, त्यौहार के अवसर पर बस्ति के सब मिलकर संपन्न करते हैं। होली के अवसर पर बस्ति में ढोल, मांदल के अवसार पर गाँव तथा बस्तीवालों के मन थिरक उठते हैं। औरते हँस रही थी। बच्चे नाच रहे थे। मर्दों और औरतों के गोल घेरे में गीत गा रहें हैं.....कज्जा अपनी आदिवासी बोली भाषा में देवता को प्रार्थना करती है कि हम कष्ट में है, और हमारे दुःख को दूर करों.....

"मोरी चंदा चोकर काजर लगा कें आ गई भोर ही भोर,
मोरी चंदा चोकर, छतिया पे तोता, करिह पै मोर,
मोरी चंदा चोकर, चोली में निबुआ घँघरा घुमेर"।[2]

साथ ही उपन्यास में जंगलिया का मृत्यु होती है तब सारे कबूतरियों मिलकर जंगलिया के पास बैठकर सिसक- सिसकर लोकगीत गाती हैं।

"आजो तो जाजो तो पनफूटे मत जातो रे
घोड़ों घोड़ो घूमती, मोर आवती। फुलवादी फेवड़ा
आवतीं, आवतीं हमीर दे, वीर दे.....।"[3]

यह गीत चुनाव और सामाजिक आयोजन के समय गाया जाता है। लोकगीत पात्रों की सामूहिक चेतना, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और सामाजिक संघर्ष को व्यक्त करता है।

आदिवासी समाज में लोकगीतों की परंपरा काफी पुरानी रही है।आदिवासी समाज में लोकगीत प्रत्येक त्योहार तथा पर्व के अवसर पर अलग-अलग मौखिक रूप में प्रचलित है। इन गीतों के माध्यम से आदिवासी समाज में सामूहिकता, एकता, बधुता के दर्शन होते हैं। हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत का भी रचनाकारों ने अपने रचना में चित्रित किया है। आदिवासी समाज प्रकृति के गोद में प्राचीनता से निवास करता आया है। दिनभर की थकान दूर करना, सुख-दुःख की समय, पर्व, त्यौहार, शादी-ब्याह, फसल की कटाई आदि अवसर पर आदिवासी समाज लोकगीत का गीत सुनने को मिलते है। राकेश कुमार सिंह द्वारा लिखित 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में पराजय के वक्त उरांव आदिवासी समुदाय द्वारा लोकगीत का चित्रण मिलता है। रोहतास गढ़ के पतन की पीड़ा उराँव स्त्रियों रोहतास गढ़ की पराजय के प्रतिकार का पर्व सभी उराँव समुदाय प्रतिक पर्व 'जनीशिकार' अब आखेट पर्व.....'जनीशिकार'!

"ओरे छूँ गंगा, पारे छूँ जमुना, धारे-धारे तुरका आवै रेSSS
हाथा में तरवारे, खाँदा में बंदूक, धारे-धारे तुरका आवै रे।
गाछा केरा मैना लिरो झोरा कान्दाय
नदी तीर-तीर घोड़ा दाडय रे .....।"[4]

आदिवासी समाज प्रकृति के नियमन पर चलनेवाला है। जब भी ऋतु परिवर्तित होता है तो तब कोई ना कोई त्योहार, पर्व आता है। आषाढ़ के पहली फुहार के सात बाघामुंडी में मानो नवजीवन खिल उठता है। जब तक आसाढ़िया पूजा नहीं होती तब तक कोई फसल नहीं काटते। इस अवसार पर ढोल, मांदल के धमक से बौराया संथाल बाहा पर्व का वासंती गीत गाती है।

"धरती तांग तिस काबा
दत्ते धरती ओदा तिस ओदा
बादुर देन बादुर
बादुर अतान तेतांग लगाईSSS।"[5]

'हूल पहाड़िया' उपन्यास में गाँव के सारे युवक-युवती रात को युवागृह में इक्कठा होते हैं। उसे घोटुल भी कहते है। यह घोटुल आदिवासी समुदाय का एक शिक्षा या संस्कार का केंद्र माना जाता है। जिसमे में आचार-विचार, नैतिक कुछ शिक्षा भी प्राप्त होते हैं। इस केंद्र में आदिवासी लड़का-लड़की रात भर नाचना-गाना, ढोल-मांदल के ताल पर गीत गाना आदि कार्य संपन्न होते है। उपन्यास में लेखक ने मांदल के थाप के ताल पर युवागृह में अपनी बोली भाषा में प्रस्तुत किया है।

"केरो केमो कूटा हो गुड़िया,
किड़े पीठे नी,
हेसो गति किड़े सात सागाड़,
काना जारेत हेन हुई तान,
केनो कूटा हो गुड़िया,
किड़े पीठे नी....."।[6]

'हूल पहाड़िया' राकेशकुमार सिंह के उपन्यास में 'वाघबुरु' गाँव के 10 दिन के मेले का वर्णन किया गया है। मेले की भीड़ से बहार मांदल की आवाज आ रही थी। जबरा नाच-गान की ओर आकर्षित होता है। युवक-युवतियाँ गोलाकार रूप में नृत्य के साथ गीत गाते नृत्य हो रहा है। बड़ा-सा गोल घेरा बनाए नाच रही थी वनजाएँ। हरेक के बाएँ हाथ में दूसरी लड़की का हाथ था और दायाँ हाथ बगल लड़की की कमर से लिपटा था। पारंपरिक वेश-सज्जा में सजी बालाएँ घेरे में झूमर नाच रही थी। गा रही थी।

"चैतन पूनो की रात में,
मत बजाओं बांसुरी,
ओ बांसुरी वाले, डरता है मन,

कहीं पति-गृह छोड़कर,
जहाँ बज रही,
तेरी चितचोर बासुरी।"[7]

संथाल आदिवासी समुदाय में आषाढ़ के माह में 'जाहेर आयो' (धानदेवता) की पूजा की जाती है। 'जाहेर आयो' का मतलब है संथालों के सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सृष्टिकर्ता अच्छी फसल आये। इनकी पूजा करने से जीवन की आवश्यकताएं पूरी होती है ऐसी मानताएं हैं। इस पूजा के अवसर पर धरती माता को प्रसन्न करने के लिए 'जाहेर आयो' की विधिवत पूजा की जाती है। इस अवसर पर मांदल के धुन के साथ.... गीत का गया जाता है।

"अतांग दा-दिंग.....धातिंग-धातिंग
"धरती कएतम इंग
दात्ते तेतांग लगाई तिंग
धरती अबाबो दा केतान मेना आ
दात्ते धरती ताबो सोना रेSSS"।[8]

'मरंग गोड़ा नीलकंठ' हुआ महुआ मांझी के उपन्यास आदिवासी जीवन की आंतरिक संरचना को उजागर करता है, जहाँ लोकगीत केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ का साक्ष्य हैं। जंगल कटाई, खेती, महुआ बीनने और सामूहिक श्रम के अवसर पर आदिवासी लोकगीत..... यह गीत श्रम की लय, सामूहिकता और प्रकृति के साथ सहजीवन को रेखांकित करते हैं।

"कुल्हाड़ी की ताल में गीत उठे,
पसीने से धरती मुस्काए"।[9]

साथ ही उपन्यास में पारंपरिक अनुष्ठान एवं धार्मिक के अवसर पर लोकगीत बीमारी, अकाल, फसल और ग्राम-कल्याण के लिए सामूहिक प्रार्थनात्मक गीत वर्णित हैं।

"मरंग गोड़ा, आओ गाँव,
दुख हर लो, खेत हरे हो जाएँ"[10]

यह लोकगीत सामूहिक आस्था और संकट-निवारण की लोक-मान्यता के वाहक हैं।

निष्कर्ष : इक्कीसवीं सदी के हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत केवल पारंपरिक संगीत या मनोरंजन का साधन नहीं हैं। वे आदिवासी जीवन, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम हैं। जो आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, सांस्कृतिक पहचान और ऐतिहासिक अनुभवों को सशक्त रूप उजागर हुआ। लोकगीत पात्रों की भावनाओं, संघर्ष और सामाजिक चेतना को व्यक्त करते हैं, उपन्यास की कथानक संरचना और भाषा को समृद्ध बनाते हैं और पाठक को आदिवासी जीवन की वास्तविक अनुभूति प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची :

1. तेजिंदर, काला पादरी, पृष्ट सं 42 साहित्य भंडार, इलाहाबाद
2. मैत्रेयी पूषा, अल्मा कबूतरी, पृष्ट सं 42 राजकाल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. वही पृष्ट सं. 26
4. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, पृष्ट सं.31 भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली
5. वही पृष्ट सं.115
6. राकेश कुमार सिंह, हूल पहाड़िया, पृष्ठ सं.70 सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली
7. वही पृष्ट सं.77
8. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, पृष्ट सं.116, भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली
9. महुआ मांजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ,142
10. वही पृष्ट सं. 160

*****

लोकगीतों में जीवन-मूल्य : साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में

डॉ. प्रवीण तुलशीराम तुपे
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, कोल्हार
ई-मेल: pravintupe319@gmail.com
दूरभाष नंबर: 9850303126

शोध-सार

भारतीय लोकगीतों में जीवन-मूल्यों का साहित्यिक और सांस्कृतिक संदर्भों में गहन अध्ययन करने का प्रयास है। लोकगीत, लोकजीवन की सामूहिक भावनाओं, सामाजिक जागरूकता और सांस्कृतिक परंपराओं का अभिव्यक्ति माध्यम होते हैं। इनमें अभिव्यक्त जीवन-मूल्य जैसे प्रेम, करुणा, मेहनत, सहयोग, धैर्य, पारिवारिक निष्ठा, नारी का सम्मान और प्रकृति के साथ संतुलन, भारतीय समाज की नैतिक संरचना को दर्शाते हैं। यह शोध आलेख लोकगीतों को साहित्य और संस्कृति का एक पुल मानते हुए यह स्थापित करता है कि लोकगीत सिर्फ मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि इनमें गहरे विचार और सामाजिक संदेश भी निहित हैं। अध्ययन में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग करते हुए लोकगीतों के उदाहरणों के माध्यम से जीवन के मूल्यों पर चर्चा की गई है। आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभावों के बावजूद, लोकगीतों में समाहित जीवन के मूल्य आज भी समाज को नैतिक दिशानिर्देश देने में सक्षम हैं।

बीज शब्द : लोकगीत, लोकसाहित्य, जीवन-मूल्य, लोकसंस्कृति, पारिवारिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य, श्रम-संस्कृति, सांस्कृतिक परंपरा, लोकजीवन।

प्रस्तावना : भारतीय लोकसाहित्य की विरासत प्राचीन और समृद्ध है, जिसमें जीवन से जुड़ी अनगिनत कहानियाँ समाहित हैं। लोकगीत इस परंपरा का एक महत्वपूर्ण साधन हैं, जिनमें लोकजीवन की सरल भावनाएँ, सामाजिक अनुभव और सांस्कृतिक जागरूकता का संकेत मिलता है। जब लिखित साहित्य का उद्भव नहीं हुआ था, तब लोकगीतों के माध्यम से समाज ने अपने मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं और सांस्कृतिक परंपराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित किया। लोकगीत मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे जन्म, विवाह, श्रम, उत्सव, दर्द और संघर्ष से गहरे जुड़े होते हैं, जिससे इनमें निहित जीवन-मूल्य बेहद स्वाभाविक और प्रभावशाली बन जाते हैं। लोकगीतों में प्रेम, करुणा, त्याग, परिश्रम, सहनशीलता, पारिवारिक निष्ठा, नारी-सम्मान, जैसे महत्वपूर्ण मूल्य भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान को दर्शाते हैं। साहित्य इन मूल्यों को एक कलात्मक रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि संस्कृति उन्हें समाज के व्यवहार में स्थापित करती है। इस तरह, लोकगीत साहित्य और संस्कृति के बीच एक जीवंत पुल का काम करते हैं। इस शोध का उद्देश्य लोकगीतों में निहित जीवन-मूल्यों का अध्ययन करना है, ताकि उनके साहित्यिक और सांस्कृतिक संदर्भों को स्पष्ट किया जा सके और उनकी सामाजिक प्रासंगिकता को समझाया जा सके। यह प्रयास लोकगीतों के महत्व को उजागर करता है और उनके द्वारा समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की संभावना की तलाश करता है। भारतीय लोकसाहित्य की परंपरा बेहद पुरानी और समृद्ध है। जब लिखित साहित्य का विकास नहीं हुआ था, तब समाज ने अपने अनुभव, भावनाएँ, विश्वास और जीवन-मूल्य को लोकगीतों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित किया। लोकगीत मानव जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक के संस्कारों, श्रम-संस्कृति, उत्सवों और सामाजिक संबंधों से गहराई से जुड़े हुए हैं। इसलिए, इन गीतों में जीवन-मूल्य सरल, स्वाभाविक और प्रभावशाली तरीके से व्यक्त होते हैं।

लोकगीत : अर्थ एवं परिभाषा

लोकगीत वह सांस्कृतिक विशेषता है जो जनजीवन से जन्मी है और मौखिक परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्रवाहित होती रही है। ये गीत लोगों द्वारा बनाए जाते हैं और उनके सुख-दुख, आशा-निराशा, मेहनत, उत्सव, संस्कार और संघर्ष की सहज छवि प्रस्तुत करते हैं। लोकगीतों का कोई विशेष रचनाकार नहीं होता; यह सामूहिक चेतना का परिणाम होते हैं। इनमें कृत्रिमता का अभाव होता है और ये जीवन की स्वाभाविकता तथा सच्चाई को दर्शाते हैं।

लोकगीतों का कोई निश्चित रचनाकार नहीं होता; सामूहिक चेतना ही इनकी स्रष्टा होती है। यही कारण है कि इनमें कृत्रिमता नहीं, बल्कि जीवन की स्वाभाविकता और सच्चाई निहित रहती है। लोकगीत वे गीत हैं जो लोक द्वारा, लोक के लिए और लोक में प्रचलित होते हैं। ये मौखिक परंपरा से आगे बढ़ते हैं और सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "लोकगीत उस जनता की वाणी है जो लिखना नहीं जानती, पर जीना जानती है।"[1] धीरेन्द्र वर्मा लोकगीतों को

लोकजीवन का दर्पण मानते हुए लिखते हैं- "लोकगीतों में लोकजीवन की सहज अनुभूति, श्रम और उल्लास एक साथ अभिव्यक्त होते हैं।"[2]

जीवन-मूल्य : अवधारणा

जीवन-मूल्यों का अर्थ नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सिद्धांतों से है, जो मानव अस्तित्व को दिशा, उद्देश्य और अर्थ प्रदान करते हैं। ये मूल्य किसी व्यक्ति के व्यवहार, सोच और सामाजिक संवाद को प्रभावित करते हैं। लोकसाहित्य में जीवन-मूल्य दार्शनिक सिद्धांत के रूप में नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन के अनुभवों के रूप में प्रकट होते हैं। इसीलिए, लोकसाहित्य में मौजूद मूल्य अधिक स्वाभाविक, लोकसाहित्य, विशेषकर लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य और कहावतें, जीवन के मूल्यों को सामूहिक चेतना के रूप में दर्शाते हैं। इनमें प्रेम, करुणा, त्याग, मेहनत, सहनशीलता, पारिवारिक वफादारी, नारी का सम्मान, सामाजिक एकता और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व जैसे महत्वपूर्ण मूल्य स्पष्ट होते हैं। ये मूल्य समाज के दैनिक जीवन की गतिविधियों जैसे जन्म, विवाह, श्रम, त्योहार और मृत्यु से गहरे जुड़े हुए हैं। भावी और जन समुदाय के करीब होते हैं। लोकसाहित्य में जीवन के मूल्यों का यह विचार समाज को नैतिक मार्गदर्शन देता है और सांस्कृतिक स्थिरता को बनाए रखने में मदद करता है। इस प्रकार, लोकसाहित्य एक जीवंत शैक्षणिक मंच के तौर पर काम करता है, जहाँ मूल्य व्यवहार, परंपरा और अनुभव के जरिये होते हैं। जीवन के मूल्य ऐसे नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मानक हैं जो मानव जीवन को मार्गदर्शन और अर्थ देते हैं। ये मूल्य सत्य, प्रेम, करुणा, परिश्रम, त्याग, पारिवारिक निष्ठा और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे सिद्धांतों के रूप में लोकगीतों में भिन्न तरीकों से प्रकट होते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"लोकसाहित्य में जीवन का आदर्श नहीं, जीवन का यथार्थ बोलता है।"[3] लोकसाहित्य में जीवन-मूल्यों की यह अवधारणा समाज को नैतिक दिशा प्रदान करती है तथा सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखती है। इस प्रकार लोकसाहित्य जीवन-मूल्यों की सजीव पाठशाला के रूप में कार्य करता है, जहाँ मूल्य व्यवहार, परंपरा और अनुभव के माध्यम से संप्रेषित होते हैं।

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति—ये तीनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और भारतीय समाज की सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। लोकगीत संस्कृति की मौखिक अभिव्यक्ति हैं, साहित्य उसका कलात्मक एवं बौद्धिक रूप है, जबकि संस्कृति जीवन का व्यवहारिक पक्ष प्रस्तुत करती है। लोकगीतों के माध्यम से संस्कृति के मूल्य, विश्वास, परंपराएँ और जीवन-दर्शन सहज रूप में साहित्य में प्रवेश करते हैं।आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लोकगीत और संस्कृति के संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "लोकगीतों में संस्कृति का वह रूप सुरक्षित रहता है जो ग्रंथों में नहीं मिल पाता।"[4] लोकगीत साहित्य की मूल प्रेरणा रहे हैं। छायावाद, प्रगतिवाद और नई कविता तक लोकगीतों की संवेदना और बिंब-विधान का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इस संदर्भ में रामकुमार शर्मा का मत उल्लेखनीय है- "लोकगीत साहित्य को जनजीवन से जोड़ते हैं और उसे सांस्कृतिक आधार प्रदान करते हैं।"[5] धीरेन्द्र वर्मा लोकगीतों को संस्कृति का जीवंत दस्तावेज मानते हैं- "लोकगीत संस्कृति की चलती-फिरती पाठशाला हैं, जिनमें जीवन और साहित्य साथ-साथ चलते हैं।"[6]

इस प्रकार लोकगीत संस्कृति के संवाहक हैं, साहित्य उनके सौंदर्य और भावात्मक विस्तार का माध्यम है तथा संस्कृति उनके सामाजिक अर्थ को स्थायित्व प्रदान करती है। लोकगीत, साहित्य और संस्कृति का यह अंतर्संबंध भारतीय समाज की पहचान और जीवन-मूल्यों को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोकगीत साहित्य की मौखिक परंपरा हैं और संस्कृति के व्यवहारिक पक्ष को व्यक्त करते हैं। साहित्य जहाँ इन मूल्यों को कलात्मक रूप देता है, वहीं संस्कृति उन्हें जीवन-व्यवहार में स्थापित करती है। इस प्रकार लोकगीत साहित्य और संस्कृति के मध्य सेतु का कार्य करते हैं।

"मोती सोनं नाणं, कोण पुसतो मालाला,
मन कन्यापुत्र लाला।
पाळन्याची दोरी, हालते ज्या घरात,
शाहाना धुते होत।
कय ते असून, उदंड अनधन,
नही पोटी नारायेन।।"[7]

इन पंक्तियों में भावपूर्ण और सौंदर्यपूर्ण चित्रण दिखाई देता है। नारी का घर धनसंपन्न होने के बावजूद भी उसे पूत्र प्राप्ती नहीं होने के कारण नारी के मन का खालीपन इन पंक्तियों में दिखाई देता है। इस प्रकार नारी का हृदयस्पर्शी चित्रण इन पंक्तियों में मिलता

है। परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है। पूरा देश विभिन्न छोटे-छोटे परिवारों में विभाजित है। भारतीय समाज और संस्कृति परिवारों के ताने-बाने में बसी हुई है। इसके महत्व के कारण भारत की पहचान और भी मजबूत होती है। भारतीय समाज की पारिवारिक आधारभूत संरचना सामान्यतः संयुक्त परिवारों पर निर्भर करती है। अलग-अलग क्षेत्रों में अधिकांश लोग संयुक्त परिवारों में रहकर अपना जीवन यापन करते हैं। इसका प्रमुख आधार प्रेम की भावना, सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं और मान्यताओं पर आधारित है। संयुक्त परिवार में व्यक्ति पर चाहे जितने भी कष्ट, विपत्ति एवं विषमताएँ क्यों ना हों परिवार एकजुट हो, समस्या को सहज एवं सरल भाव से दूर कर लेता है जैसा कि किस लोकगीत में व्यक्त हुआ है–

"पिया एकला गंडासा मत फेरियों, मत फेरियों हो
तेरी देहि-की-करडाई,
तेरा सारा कुंणबा ठाली सै,
हो ठाली सै-कोये ना किसै का भाई।
मेरा बडला बीरा घेर में हे-रे-घेर में,
मेरी भावज खेत तै आई,
म्हारा हो रह्या धारां का टैम सै, हे-रै-टैम
सै तनै क्यूकर सुझै अचाई?"[8]

भारतीय समाज में विवाह को एक महत्वपूर्ण सामाजिक और धार्मिक संस्था के रूप में देखा जाता है। इसे जीवन के जरूरी संस्कारों में से एक मानते हैं। भारतीय समुदाय में शादी का उत्सव धूमधाम और उमंग के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर वर और कन्या पक्ष विभिन्न रीति-रिवाज़ों के अनुसार कई अनुष्ठान करते हैं। इनमें सगाई, मेहंदी, भात, और हल्दी-गीत जैसे शुभ कार्य शामिल होते हैं। यह सभी रस्में एक दूसरे के साथ मिलकर इस विशेष दिन को और भी खास बनाती हैं। विवाह के चलते एक लोकगीत भी गाया जाता है, जिसे कन्या पक्ष से वधू गाती है। मेरे बन्ने को किसने सजाया उसके प्रति भाव प्रकट कर रही है–

"सुने री लचकदार बन्ना मेरा किनने सजाया जी।
बाबा सजाया जी दादी सजाया जी, दादी का तावेदार,
दादी कू जोड़े हात। बन्ना मेरा किनने . . .
अम्मा कू जोड़े हात। बन्ना मेरा किनने सजाया जी।"[9]

संयुक्त परिवार में, जहाँ एक ओर सहानुभूति और प्रेम का अनुभव होता है, वहीं कई प्रकार के संघर्ष भी देखने को मिलते हैं। जब विभिन्न विचारधाराओं वाले लोग एक साथ रहते हैं, तो कई तरह की असमानताएँ उत्पन्न हो सकती हैं। ये असमानताएँ कभी-कभी कलह के रूप में प्रकट होती हैं, जो आयु के भेद, समय और परिवेश के प्रभाव, व्यवसाय में मतभेद, और भेदभाव के कारण उत्पन्न होती हैं। इस लोकगीत में संयुक्त परिवार में सास–बहू, नंद–भावज और जेठानी–देवरानी के संबंधों में परस्पर दूरी आ जाती है–

"जेठ मन्नै न्यारी कर दें, क्यूँ घर में राड़ जगावै,
तेरी बहू का घर मैं 'टोरा' [रोब] आधी रात जगावै सै,
ठाआरा सर पीसण नै धर दे आधी रात जगावै सै,
इसी जिंदगानी में आग लगै, हो जडै रात्यं आवै रोंणा,
जेठ मन्नै न्यारी कर दें क्यूँ .... जगावै। "[10]

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि लोकगीत संस्कृति के जीवन-मूल्यों को जन्म देते हैं, साहित्य उन्हें कलात्मक और भावात्मक विस्तार देता है तथा संस्कृति उन्हें सामाजिक व्यवहार में स्थायित्व प्रदान करती है। इस प्रकार लोकगीत, साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध भारतीय समाज की पहचान, परंपरा और जीवन-दर्शन को सुरक्षित रखने में केंद्रीय भूमिका निभाता है।

लोकगीतों में पारिवारिक जीवन-मूल्य

भारतीय लोकगीतों में परिवार को सामाजिक जीवन की आधारशिला के रूप में मान्यता दी गई है। जन्म, विवाह, विदाई, और पर्व-त्योहारों से जुड़े ये गीत परिवार के महत्व को दर्शाते हैं और इनमें प्रेम, स्नेह, त्याग, कर्तव्य, सामूहिकता और संस्कारों जैसे महत्वपूर्ण पारिवारिक मूल्यों का जीवंत रूप में वर्णन किया गया है। ये लोकगीत पारिवारिक रिश्तों को मजबूती प्रदान करते हैं और समय के साथ-साथ संस्कारों को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने का कार्य करते हैं।

लोकगीतों में श्रम-संस्कृति और जीवन-मूल्य

भारतीय लोकगीतों का सार श्रम-संस्कृति में निहित है, जो जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाता है। कृषि, पशुपालन, बुनाई, मछली-पकड़ और घरेलू कार्यों से संबंधित गीतों में श्रम को केवल आजीविका का साधन ही नहीं, बल्कि एक विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये लोकगीत यह दर्शाते हैं कि श्रम और आनंद का गहरा संबंध है, जो प्रतिदिन की जिंदगी में परिलक्षित होता है। कृषि से जुड़े गीतों में किसान की मेहनत, भूमि के प्रति उसकी श्रद्धा और सामूहिक श्रम के भाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। इनमें यह भावना नजर आती है कि सिर्फ श्रम करने से ही जीवन में समृद्धि और विकास हासिल किया जा सकता है। श्रम के दौरान गाने का यह चलन इस बात का प्रमाण है कि कठिन परिश्रम में भी आनंद खोजा जा सकता है।इस प्रकार लोकगीतों में निहित श्रम-संस्कृति मानव जीवन को नैतिक दिशा प्रदान करती है और यह सिद्ध करती है कि श्रम ही जीवन का वास्तविक सौंदर्य और आधार है। रामकुमार शर्मा लिखते हैं- "लोकगीतों में श्रम केवल आजीविका नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन के रूप में उपस्थित होता है।"[11]

लोकगीतों में सामाजिक और नैतिक मूल्य

लोकगीत भारतीय लोकसाहित्य की एक जीवंत अभिव्यक्ति हैं, जिनमें समाज के सामाजिक और नैतिक मूल्यों का सरलता से प्रतिबिंब देखने को मिलता है। ये गीत आम जन जीवन से निकलकर सामाजिक व्यवहार, परंपराओं और नैतिक आदर्शों को पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित करते हैं। लोकगीतों में मानवता के बीच प्रेम, सहयोग, करुणा, सह-अस्तित्व और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे मूल्यों की प्रमुखता होती है। विशेष रूप से विवाह, जन्म, पर्व-त्योहार और श्रम से जुड़े लोकगीतों में सामूहिकता और सामाजिक एकता की भावना छिपी होती है। ये गीत व्यक्तियों को समाज से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निष्कर्ष

लोकगीत भारतीय समाज के जीवन-मूल्यों के संरक्षक हैं। लोकगीतों में निहित जीवन-मूल्य आज भी समाज को नैतिक दिशा प्रदान करने में सक्षम हैं। अतः लोकगीत केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के सांस्कृतिक पथप्रदर्शक हैं। लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे उपदेशात्मक न होकर अनुभवजन्य हैं। जीवन-मूल्य इनमें कथन के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में आते हैं। यही कारण है कि इनका प्रभाव गहरा और स्थायी होता है। साहित्य के माध्यम से इन मूल्यों को वैचारिक विस्तार मिलता है, जबकि संस्कृति में वे व्यवहारिक रूप धारण करते हैं। लोकगीत भारतीय समाज की आत्मा हैं। वे जीवन-मूल्यों के संरक्षण, संवर्धन और पुनर्स्थापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समकालीन सामाजिक विघटन और मूल्य-संकट के दौर में लोकगीतों का अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक पुनर्निर्माण की दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक है। प्रकृति-प्रधान लोकगीत मानवता और पर्यावरण के बीच के गहरे संबंध को उजागर करते हैं, साथ ही संरक्षण, संतुलन और आभार जैसे महत्वपूर्ण जीवन-मूल्यों को बढ़ावा देता हैं।

संदर्भ सूची

1.हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोक साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ. 27
2.धीरेन्द्र वर्मा, लोकगीत और लोकजीवन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ.62
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोक साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ.15
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोक साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ.19
5. शर्मा रामकुमार, भारतीय लोकसंस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ.47
6. धीरेन्द्र वर्मा, लोकगीत और लोकजीवन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ.33
7. डॉ. लता लांजवार, व-हाडी बोलीतील लोकसाहित्यःस्वरुप आणि समीक्षा, विजय प्रकाशन, नागपूर-2003, पृष्ठ.38
8. डॉ. सावित्री,हरियाणा की लोक-संस्कृति, पृष्ठ.89
9. डॉ. रवींदर भ्रमर, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-52
10.डॉ. सावित्री, हरियाणा की लोक-संस्कृति, पृष्ठ.89
11.रामकुमार शर्मा, भारतीय लोकसंस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ.118

*****

हिंदी गजलों में मानवीय मूल्य

डॉ. संतोष बबनराव माने
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
शिवराज महाविद्यालय,
गडहिंग्लज (महाराष्ट्र)
मो. 9552093972

प्रस्तावना -

समाज में मानवता का होना यह जीवित समाज का प्रमाण है। आज के इस युग में जीवित मानव या मनुष्य तो हमारे आस-पास है परंतु मानवता का चेहरा अस्पष्ट होता जा रहा है। मानव का और मानवीय मूल्यों का चेहरा हमारा साहित्य है। वास्तव में मनुष्य के चेहरे बदल सकते हैं परंतु हिंदी साहित्य का चेहरा शायद नहीं। हिंदी साहित्य ने मानवी जीवन को सही राह दिखाने का सफल प्रयास किया है। मानव को मानवता दिखाकर सही मानवी जीवन की ओर ले जाने का काम साहित्य के माध्यम से हुआ। वैसे साहित्य में उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, गजल जैसी अनेक विधाएँ हैं। आज समकालीन समय में गजल यह विधा महत्वपूर्ण बन चुकी है। बच्चों के लिए माँ-बाप गुरु हैं, तो मानव के लिए अच्छा साहित्य गुरु है। यह सच है कि मानव सुधार में ही समाज सुधार है तो समाज सुधार में ही देश सुधार है। वर्तमान समय में गजलकारों ने अपनी गजलों के माध्यम से यही सुधार किया है। प्रगतिवादी के इस युग में मानव ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति और बदलाव किए हैं। इक्कीसवीं सदी में, यंत्रों के बल पर मनुष्य ने जमीन से आसमान तक जीवन बनाया है। मानव तो चाँद पर गया लेकिन अपने मूल्यों को जमीन पर ही छोड़ दिया। गजलकारों ने अपनी गजलों के माध्यम से राजनीति, सामाजिक, धार्मिक सुधारने पर बल देकर मानवी मूल्यों में चेतना लाने का सफल ही प्रयास किया है।

बीज शब्द - समाज, साहित्य, मूल्य, गजल

मुख्य विषय –

मानवीय मूल्यों का पुनः निर्माण वर्तमान मानवी जीवन सुधार के लिए महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। बिना रस के फल अधूरा वैसे बिना मानवता के मानव अधूरा। गजलकार इसी मिठास गजलों के माध्यम से मानव जीवन को सुंदर बनाने का प्रयास करते हैं। हिंदी साहित्य के गजलकारों में दुष्यंत कुमार, जहीर कुरेशी, हस्तीमल हस्ती, आलोक त्यागी, आलोक श्रीवास्तव जैसे अनेक महान कवि रहे हैं। वैसे गजलों का ज्यादातर मुख्य विषय प्रेमपरक रहा है। गजलों में गजलकार और श्रोता मदहोश दिखाई देते हैं। हिंदी साहित्य में ऐसी भी गजलें हैं जिनमें मानवीय मूल्य और मानवीय मूल्यों की चेतना स्पष्ट रूप से उजागर होती है। भारतीय समाज में भावुकता की झलक अधिक रही है। हिंदी साहित्य में गजलों के माध्यम से भारतीय भावमयी समाज के इस मानव में संवेदनशील अहिंसा का महत्व निर्माण करने का प्रयास हुआ है। मानव या समाज हो उसके दो पहलू हैं एक अच्छा और दूसरा बुरा। भारतीय संस्कृति में अच्छी सभ्यता का होना लक्ष्य रहा है। माया-मोह के इस संसार में मानव जीवन भटकता है तब साहित्य ही उसे सही मार्ग पर लाने का प्रयास करता है।

"सामने नंगी खड़ी जब सही, सभ्यता का हर दिखावा व्यर्थ है।
आदमी के दर्द को समझे बिना, आदमी होने का दावा व्यर्थ है।"[1]
-कातिल सफाई

भारतीय समाज में मौलिक अधिकारों को कुचला है। शासन सभ्यता का चेहरा तो दिखाती है लेकिन मानवीय सुधार या उनके अधिकारों को कुचलती रही है। दर्द का एहसास जितना मनुष्य को होता है उतना एहसास अधिकारी, शासन को नहीं होता। आज भी हमारे समाज में दरिद्रता, भुखमरी, शिक्षा जैसी समस्याओं से समाज गुजरता दिखाई देता है। शासन या उद्योजक आज देश के मालिक बन चुके हैं। अमीरों से गरीबों पर अन्याय, अत्याचार होता रहा है।

"हजारों खुशबुएँ दुनिया में हैं पर उससे कमतर है।
जो भुखे को किसी सिकती हुई रोटी से आती है।।"[2]
— कुँवर बेचैन

मानवी समस्याओं को देखकर कभी-कभी ईश्वर और सत्ता के अस्तित्व पर ही संशय होना यह बड़ी समस्या बन चुकी है। समाज में भ्रष्टाचार, शोषण इतना बढ़ चुका है कि यह समाज इन समस्याओं के अंधकार में डूबता जा रहा है। अंधकार से बाहर आने के लिए दीपक की नहीं बल्कि सूरज की आवश्यकता है और यह सूरज आज की युवा पीढ़ी है।

"मेरे सीने में न सही, तेरे सीने में सही।
हो कहीं भी आग, आग जलनी चाहिए॥"

दुष्यंत कुमार की यह गज़ल युवा पीढ़ी में क्रांति का सूरज लाने का प्रयास करती है। गजलकार समाज में नई चेतना लाने का प्रयास अपनी गजलों से करते हैं। समाज की समस्याएँ एक अच्छे मनुष्य को, कवि को झकझोर करती है। तभी वह कवि एक सूर्योदय की कल्पना को वास्तविकता में लाने का प्रयास करता रहता है।

समाज में संस्कृति और सभ्यता की आड़ में भी समाज शोषण होता रहा है। भेदभाव, आडंबर, अत्याचार यह समस्याएँ समाज के माहौल को बिगाड़ रही हैं।

"इस नए माहौल में जो भी जिया बीमार है
जिस किसी से भी नया परिचय किया बीमार है॥"[3]

आज के इस वर्तमान काल में व्यभिचार ही मानव के लिए शिष्टाचार बना है। व्यभिचार की इस अवस्था में मानव-मानव होने में संशय हो रहा है। समस्त देश की सेवा करने चुनें हुए नेता देश को ही खोखला कर रहे हैं तो कहीं व्यापारी लोग सामान्य लोगों के लिए काल बन चुके हैं। भारतीय किसान एवं मजदूर वर्ग का जीवन शापित हो रहा है। इस वर्ग के लोग बुद्धिवादी वर्ग के इस जीवन में विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। परिणाम किसान की आत्महत्या यह बड़े राक्षस के रूप में उभरा प्रश्न है फिर भी शासनकर्ता के लिए यह आम बात बनी है।

"सारा ध्यान खजाने पर, उसका तीर निशाने पर है।
अब इस घर के बँटवारे में, झगड़ा बस तहखाने पर है।
होरी सोच रहा है उसका, नाम यहां किस दाने पर है।"[4]

भारत कृषि प्रधान देश है। देश का वैभव खेत और किसान पर आश्रित है। फिर भी आज खेती और किसान संकटों से गुजर रहें है। वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, औद्योगिक विकास की दौड़ में हम अपनी मूल जड़ों को ही खो रहे हैं। गजलकार इन्हीं समस्याओं से उभरकर उनमें मानवीय मूल्य और सभ्यता को जाग्रत करता है।

उपसंहार में यही है कि वर्तमान पीढ़ी को उनके एहसास और जिम्मेदारियों को दिखाना आवश्यक है। साहित्यकार अथवा गजलकार यह बखूबी जानता है। वर्तमान के समाज का असर भविष्य के समाज पर होता है। हमारा भविष्य यह हमारे वर्तमान के कर्मों पर ही आधारित होता है। सरकार, शासन को आईना दिखाने का काम लेखक, कवि करता है। समाज के दायित्व को वह समझाता है। महान देश यह महान समाज पर ही बन सकता है। प्रकृति, समाज, देश के मूल्यों को समझना आवश्यक है उन पर चलना आवश्यक है। हिंदी साहित्य में गजलकारों ने अपनी रचना के माध्यम से मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ -

1. हिंदी की चुनिंदा गजलें - गौरीनाथ, पृष्ठ 16
2. आधुनिक हिंदी के बदलते सरोकार - सरकार मुजवर, पृष्ठ 25
3. आँधियों धीरे चलो - कुँवर बेचैन, पृष्ठ 121
4. नया ज्ञानोदय - रविन्द्र कालिया, पृष्ठ 172

*****

दुष्यंत कुमार की गजलों में प्रासंगिकता

(विशेष संदर्भ : साये में धूप)

प्रा. जेलीत आनंदराव कांबळे
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय, कळे
मो.9890130917

शोधालेख सारांश :

दुष्यंत कुमार हिंदी साहित्य में ग़ज़ल विधा के सबसे प्रभावशाली गजलकारों में माने जाते हैं। उन्होंने हिंदी गजल साहित्य को एक नई गरिमा प्रदान की है। जिसमें सामाजिक चेतना, राजनीतिक व्यंग्य, जन संघर्ष और आज के व्यवस्था के प्रति क्रांति के स्वर उनकी गजलों में दिखाई देते हैं। उनकी गजलें केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है तो उसमें नव परिवर्तन की क्रांति भी दिखाई देती है। उनकी गजलों में मानवीय संवेदनशीलता, यथार्थवाद और विद्रोही चेतना भी दिखाई देती है। गजल साहित्य अरबी और उर्दू साहित्य में प्रेम और सौंदर्य की विधा रही है परंतु हिंदी साहित्य में दुष्यंत कुमार ने उसे नए सिरे से उपजीत करते हुए उन्होंने इस विधा को सामाजिक संघर्ष, अन्याय-अत्याचार और आम आदमी की पीड़ा-व्यथा और कथा से जोड़ा है। समाज में नया बदलाव लाने का प्रयास भी किया है।

उद्देश्य :

1) हिंदी गजल साहित्य का परिचय कराना।
2) गज़ल के महत्व को विश्लेषित कराना।
3) हिंदी साहित्य में ग़ज़ल के महत्व को स्पष्ट करना।

बीजशब्द : ग़ज़ल, कशिद, रजज, सौंदर्य, तश्बीब, मंजर, सलिबे, कोहरा, आकाश आदि।

प्रस्तावना :

भारतीय हिंदी साहित्य में गजल को विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। हिंदी साहित्य में यह अत्यंत लोकप्रिय एवं सशक्त काव्य विधा रही है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह देखा गया है कि हिंदी काव्य में अनेक आंदोलन एवं वाद हुए परंतु कभी हिंदी कविता की लोकप्रियता में कभी कमी नहीं आई है। नई कविता, अकविता, विचार कविता के रूप में आंदोलन और वाद हिंदी में चलते रहे हैं परंतु इसका विशेष प्रभाव आम जनमानस पर नहीं पड सका। गीत काव्य में आज नवगीत के साथ केवल गजल ही अपना अस्तित्व स्थापित कर चुकी है।

विषय विवेचन :

गजल का आरंभ इतिहासकार लगभग पंद्रह सौ वर्ष पहले अरबी भाषा से मानते हैं। अरबी भाषा में गजल कोई विशेष काव्य विधा नहीं थी, उस समय वह मुख्य रूप से 'कसीदे' (राजा के प्रशंशा के गीत) और 'रजज' (राजा के वीर रस युक्त काव्य) प्रशंसा और वीर रस के काव्य के साथ-साथ कोई कवि या शायर सौंदर्य, शराब, शबाब, प्रेम रस भरे शेर भी वहां प्रस्तुत करते थे। इसे अरबी भाषा में 'कशिदा की तश्बीब' या 'एकबंद' या 'नसीब' कहते थे। इसमें मुख्य रूप से इश्क-मोहब्बत का जिक्र होता था, आगे चलकर फारसी के शायरों ने अरबी विधा को अपनाया तो 'तश्बीब' के अशअर को अलग करके नई विधा बनाई जिसे 'ग़ज़ल' कहने लगे। बहुत से विद्वानों का कहना है कि यह फारसी से उर्दू में आई और उर्दू से हिंदी में आई यहां पर भी विद्वानों में मतभेद है कोई कहते हैं कि फारसी से सीधी हिंदी में आई। हिंदी गजल उर्दू और फारसी दोनों भाषा से प्रभावित है फिर भी हिंदी भाषा में गजल ने अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान पा लिया है।

गजल का अर्थ है प्रेम की बातें, प्रेम कविता, मीठी बातें करना, फ्लर्ट करना, प्रियकर-प्रेमिका को प्रभावित करने का काव्य है। हिंदी साहित्य कोश में गजल का अर्थ है नारियों से प्रेम की बातें करना, दुष्यंत कुमार त्यागी जो हिंदी साहित्य में 'दुष्यंत कुमार' नाम से जाने जाते हैं हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण गजलकार है। उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से समाज में एक नई चेतना लाने का प्रयास किया है। उनका 'साये में धूप' गजल संग्रह (1975) में प्रकाशित होता है। आम जनता की पीड़ा, व्यथा और बेबसी के मार्मिक स्वर उसमें मिलते हैं, तो दूसरी ओर राजनीतिक व्यवस्था के करगुजारियों के प्रति जन आक्रोश की ललकार भी है। इसमें व्यवस्था परिवर्तन के सपने और संघर्षों के लिए दस्तक भी गूंजती हुई दिखाई देती है। इसी कारण 'साये में धूप' हिंदी का ग़ज़ल

संग्रह नहीं तो हिंदी काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग़ज़ल काव्य संग्रह स्थापित हुआ है। इसलिए विजय बहादुर सिंह कहते हैं "स्वतंत्र भारत के आम नागरिक को जिन अन्यायों अत्याचारों या कदाचारों से मुकाबिल होना पड़ा था, दुष्यंत स्वयं को एक कवि के रूप में उनके मुकाबले में खड़ा पाते हैं।"1

'साये में धूप' गजल संग्रह उस समय आ गया जब स्वतंत्र भारत में स्थापित सरकार ने भारत में आपातकाल लागू किया था। तब के शासन के प्रति लोगों का यह प्रतिकार है उस समय के प्रधानमंत्री ने लोगों के प्रति दमन का काम किया है। प्रतिपक्ष को जेल में डालकर और लोगों के अधिकारों का हनन करते हुए भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा दिया गया। जो लोगों से वादे किए थे वह वादे भूल गई थी सरकार विकास के नाम पर उतना विकास नहीं कर रही थी जो लोगों को अपेक्षित था। इसलिए दुष्यंत जी ने व्यवस्था से प्रश्न किए हैं, लोगों के मन की बात को ठान लिया है। गजलकार कहते हैं ....

"कैसे मंज़र सामने आने लगे हैं,
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
यह कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।
वह सलिबों के करीब आए तो
हमको कायदे कानून समझने लगे हैं"2 पृष्ठ- 14

यहां के लोगों का चिल्लाना व्यवस्था के प्रति आवाज उठाना है। भारतीय जनता को यहां पर सुख-सुविधा, रोजगार चाहिए थे। उस प्रकार की प्रगति उस समय में नहीं हो रही थी। इसलिए लोगों ने राजनीति के खिलाफ आवाज उठाना शुरू किया था। इसीलिए योगेंद्र ठाकुर लोकतंत्र के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, "संसदीय जनतंत्र को लागू करते शुरू में जनतांत्रिक विचारकों ने सोचा था की बालिग मताधिकार के जरिए धरातल पर पड़े हुई लोग भी ऊपर उठकर सत्ता में भागीदारी करेंगे। इस प्रकार सत्ता और शासन में आम जन गण की भागीदारी होगी, लेकिन लगभग साठ वर्षों के अनुभव ने यह दिखा दिया है कि 'धनबल' और 'बाहूबल' रखने वाले ही जनता के नाम पर सत्ता काबिज कर रहे हैं, अब हालात यह है कि भारत की लोकसभा के पॉच सौ सैंतालीस सदस्यों में से कम से कम आधे से ज्यादा लोग करोड़पति बन गए हैं।"3 राजनीति में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि जो भी नेता आम जनता चुनकर भेजती है वह नेता पॉच साल में अपने पूरे जिंदगी की कमाई भ्रष्टाचार करते हुए कमा रहे हैं। आज शासन में यह देखा जा रहा है कि किस प्रकार से ज्यादा से ज्यादा भ्रष्टाचारी ही नेता बन गए हैं। आम जनता को विकास के नाम पर केवल ठेंगा दिखाया जा रहा है।

दुष्यंत कुमार का कहना है कि आज समाज लगातार बदलता हुआ नजर आ रहा है इसलिए समाज के मानवीय मूल्यों में बदलाव आया है। समाज में आज केवल दिखावा दिख रहा है। लोग दोहरे चरित्र वाले सामने आ रहे हैं। इसलिए नैतिक पतन होते हुए नजर आ रहा है इसलिए वह कहते हैं...

" यह सारा जिस्म झुक कर बोझ से दोहरा हुआ होगा
मैं सजदे में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा।
यहॉ तक आते-आते सूख जाती है कई नदियां
मुझे मालूम है पानी कहां ठहरा हुआ होगा।"4 पृष्ठ -15

ज्यादा जिम्मेदारियों के कारण मनुष्य आज थक गया है काम ज्यादा और दाम कम ऐसी स्थिति समाज में दिख रही है। दिन-रात मेहनत करने के बावजूद भी आम जनता में तरक्की नहीं हो रही है, परंतु नेता लोग समाज के विकास के नाम पर भ्रष्टाचार करते हुए परदेश के बैंकों में अपना पैसा जमा कर रहे हैं। इसलिए नेता लोगों के चरित्र दोहरे हो गए हैं समाज में एक और बाहर अलग दिखाई दे रहे हैं।

डॉ. सुधीर शर्मा दुष्यंत कुमार की जयंती के अवसर पर अपने लेख में लिखते हैं, "दुष्यंत कुमार ने गजल को महज प्रेम, विरह और व्यक्तिगत संवेदनाओं की सीमाओं से बाहर निकाल कर राजनीतिक चेतना और सामाजिक प्रतिरोध का सशक्त माध्यम बना दिया है। उन्होंने उर्दू गजल की परंपरागत रूमानियत को नकारे बिना उसे भारतीय लोकतंत्र की जमीनी सच्चाइयों से जोड़ा यही कारण है, कि उनकी गजलें आज भी संसद से सड़क और अखबार से आंदोलन पर हर जगह समान रूप से प्रासंगिक दिखाई देती है।"5

"फिर धीरे-धीरे यहां का मौसम बदलने लगा है।

वातावरण सो रहा था अब आंखें मलने लगा है।"6 पृष्ठ -22

यहां की व्यवस्था के प्रति दुष्यंत कुमार में क्रोध है और इस क्रोध के कारण उन्होंने इस प्रकार की रचनाएं गजल के रूप में की है। उन्हें लगता है कि यहां का आम आदमी जब तक सुझारु रूप से काम नहीं करेगा उसका शोषण यहां पर होता रहेगा। इसीलिए वह इस व्यवस्था से भी प्रश्न करता है कितने दिनों तक ऐसा चलेगा। आगे वह कहते हैं,

"मत कहो आकाश में कोहरा घना है,
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।" 7 पृष्ठ-27

ऐसी रचनाओं के द्वारा दुष्यंत कुमार में समाज में चल रहे यथार्थवादी स्वरूप को स्पष्ट किया है आकाश में कोहरा घना तब हो जाता है जब सामाजिक परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं दिखाई देता। समाज अपेक्षा लगाए रखा रखता है शासन से और शासन है कि जनता की ओर ध्यान ही नहीं देता इसीलिए ऐसे समय में स्वयं समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए कोहरे से बाहर निकलना होगा। समाज में चल रहे रूढी-परंपराओं को तोड़ना होगा नयी मान्यता स्थापित करनी होगी तभी देश और समाज का विकास हो सकता है। आगे दुष्यंत कुमार जी कहते हैं…

" हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।"8 पृष्ठ -30

यहां पर भी स्पष्ट रूप से आम जनता के पीड़ा को व्यक्त करते हुए बताते हैं की कितने दिनों तक ऐसे ही लोगों का शोषण होता रहेगा। अब उनकी पीड़ा वेदना और बेबसी देखी नहीं जाती। इसलिए वह कहते हैं कि यह वेदना बहुत बड़ी हो रही है और बढ़ती ही जा रही है इसलिए कोई तो भी इस पीड़ा को दूर करने के लिए नया सरकार स्थापित होना चाहिए। आम जनता की पीड़ा दूर कर सके और उन्हें सुकून दे सके। दुष्यंत कुमार लिखते हैं, "सरकार को इस प्रश्न पर सोचना चाहिए था, सरकार विधायकों का मुंह बंद करने में लगी रही और प्रश्न समाधान का मोहताज बना रहा। भ्रष्टाचार की कहानी अमरबेल की तरह बढ़ती रही है, अफसर शाही फलती-फूलती रही जनता का पैसा ठेकेदारों के हाथों हाथों में जाता रहा, और सारे विचार विमर्श बहसो के बावजूद समस्या ज्यों कि त्यों बनी रही।"9 हर एक सरकार में गरीबी उन्मूलन का कार्यक्रम चलता रहा। परंतु आज तक जितने भी सरकारें आए उन्होंने गरीबी रेखा के नीचे जीवन ज़ीने वालों को ऊपर लाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया। आज भी हम चुनाव आते ही नेता लोगों के आश्वासन सुनते हैं हम अच्छा पानी देंगे, सड़क बनवाएंगे, गटर बनाएंगे लेकिन यह कितने दिनों तक चलता रहेगा। आगे दुष्यंत कुमार जी कहते हैं …

" वह आदमी नहीं है मुकम्मल बयान है
माथे पर उसके चोट का गहरा निशान है।"10 पृष्ठ-59

देश में सांप्रदायिकता बढ़ती जा रही है। आज भी हम देख रहे हैं कोई कहता है 'हिंदू राष्ट्र' चाहिए तो कोई कहता है देश की अखंडता कायम रहे। यहां पर सांप्रदायिक दंगों के कारण कई शहर उजड़ रहे हैं। तो कहीं सांस्कृतिक विरासत को नष्ट किया जा रहा है। वहां पर नई धाराएं बन रही है परंतु पूर्व सांस्कृतिक धरोहर गिराए जा रहे हैं। इससे सामाजिक विघटन, सांस्कृतिक विघटन होता हुआ दिखाई दे रहा है। इसलिए दुष्यंत कुमार को चिंता है कि देश एक रहता है या टूट जाता है। भारत देश ने कई बार देखा है अपने आप के टुकड़े होते हुए इसीलिए दुष्यंत कुमार राष्ट्रीय एकात्मता बनाये रखने के लिए भी आवाहन करते हैं। आगे दुष्यंत कुमार जी कहते हैं…

" कहां तो तय था चिराग हर एक घर के लिए
कहां चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।"11 पृष्ठ-66

भारत में जो भी सरकारी आती है लोगों के साथ वादे तो बहुत बड़े-बड़े किए जाते हैं परंतु कौन सा भी वादा यहां पर पूरा नहीं होता दुष्यंत कुमार जी कहते हैं कि वादे तो थे हर घर में चिराग जलाने के परंतु शहर के खंबे पर भी आज चिराग दिखाई नहीं देते एक प्रकार से भारतीय शासन प्रणाली गरीब विरोधी प्रणाली हो रही है। देश को पहले तो अंग्रेजों ने लूटा परंतु आज हमारे ही नेता हमारे देश को लूट रहे हैं। विकास के नाम पर केवल खोखली घोषणाएं देते हैं इससे किसी भी प्रकार का विकास होता हुआ नजर नहीं आता और विकास अगर कर रहे हैं तो वह केवल कागजों पर दिखाई देता है फाइलों में वह बंद है। पूंजी पतियों के शोषण के बारे में सोलजी का कहना है, "पूंजीवादी शोषण व्यवस्था का लक्ष्य मजदूरों की भलाई नहीं बल्कि अपनी भलाई है, उनके मुनाफखोरी मानसिकता मजदूरों के संगठित संघर्ष को बेरहमी से कुचलने की है"12 दुष्यंत कुमार हिंदी गजल साहित्य में आम

आदमी की बात उठाने वाले गजलकार रहे हैं उन्होंने इस समाज व्यवस्था में जो जो भी गलत है उसके खिलाफ गजलों के माध्यम से आवाज उठाने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष :

दुष्यंत कुमार हिंदी साहित्य में ग़ज़ल विधा के सबसे प्रभावशाली गजलकारों में एक माने जाते हैं। इनकी गजलों में एक नई गरिमा हिंदी साहित्य में प्रदान की है। जिसमें सामाजिक जनचेतना, राजनीतिक व्यंग्य, जन संघर्ष और आज की व्यवस्था के प्रति क्रांति के स्वर दिखाई देते हैं। उनकी गजलों में केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है, तो उसमें नव परिवर्तन की चाह भी हैं। उनकी गजलों में मानवीय संवेदनशीलता, यथार्थवाद और विद्रोही चेतना को भी दिखाया गया है। गजल साहित्य फारसी और उर्दू साहित्य की प्रेम और सौंदर्य की विधा रही है परंतु दुष्यंत कुमार ने हिंदी साहित्य में उसे नए सिरे से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके गजलों की भाषा बोलचाल की भाषा होने के कारण यह सामान्य आम आदमी के दिल को छू लेने वाली भाषा है। इसमें सामाजिक संघर्ष, अन्याय -अत्याचार और आम आदमी की व्यथा को व्यक्त करने का प्रयास नए तरीके से करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

- सं. विजय बहादुर सिंह, यारों के यार: दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन, दिल्ली पृष्ठ -103
- दुष्यंत कुमार,साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 2019, पृष्ठ-14
- सं.अरुण कमल, आलोचना, सहस्राबादी, अंक 38, नई दिल्ली, पृष्ठ - 58
- दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019 पृष्ठ -15
- डॉ सुधीर शर्मा -net, Chhattisgarh Mitra @qunuay-1Jan 2026.
- दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2019, पृष्ठ -22
- दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृष्ठ -27
- दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 2019, पृष्ठ 30
- सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली भाग 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ -203
- दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019 पृष्ठ-59
- दुष्यंत कुमार साये में धूप, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृष्ठ - 68
- बोलती, समय के सरोकार, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ -115

*****

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का सांस्कृतिक, कथात्मक और भावनात्मक महत्व: 1950-1980 के 'स्वर्ण युग' का गहन विश्लेषण

डॉ. रशिद नजरूददीन तहसिलदार
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी
ईमेल – rnt540@gmail.com

परिचय (Introduction) –

1.1.) हिंदी सिनेमा में संगीत की अद्वितीय और मौलिक स्थिति * सिनेमा का भारतीय स्वरूप: पश्चिमी फिल्म निर्माण परंपराओं के विपरीत, जहां संगीत अक्सर पृष्ठभूमि तक सीमित रहता है, भारतीय (विशेषकर हिंदी) सिनेमा में गीत और नृत्य कहानी कहने का एक अभिन्न अंग हैं। इसे "म्यूजिकल सिनेमा" के रूप में परिभाषित करना। * ऐतिहासिक विकास: सिनेमा की शुरुआत से ही संगीत का महत्व, मूक फिल्मों के साथ लाइव संगीत से लेकर सवाक फिल्मों में पार्श्वगायन तक। *सांस्कृतिक जड़ें: भारतीय शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, और काव्य परंपराओं (जैसे ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल) से फिल्म संगीत का गहरा संबंध।

1.2. गीत और ग़ज़ल की परिभाषा, संरचना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि * गीत (Geet): एक सामान्य, छंदबद्ध संगीतमय रचना जिसे गाया जा सके। हिंदी फिल्मों में इसकी व्यापक विविधता का विश्लेषण: * रोमांटिक गीत: प्रेम की अभिव्यक्ति। * दुखद/करुण गीत: वियोग, पीड़ा, त्रासदी का वर्णन। * उत्सव/नृत्य गीत: खुशी, समारोह, सामाजिक मेलजोल। * दार्शनिक/प्रेरक गीत: जीवन के अर्थ, आशा या निराशा पर विचार। * बाल गीत/भजन: विशेष संदर्भों के लिए। * ग़ज़ल (Ghazal): उर्दू/फ़ारसी काव्य की एक विशिष्ट और परिष्कृत शैली। * संरचना: शेर (युग्मक), मिसरा (पंक्ति), मतला (पहला शेर), मक्ता (अंतिम शेर जिसमें शायर अपना तख़ल्लुस प्रयोग करता है)। * काफ़िया और रदीफ़: तुकांत शब्द और दोहराए जाने वाले वाक्यांश। * विषय-वस्तु: प्रेम (इश्क़-ए-हक़ीक़ी और इश्क़-ए-मिज़ाजी), दर्शन, आध्यात्मिकता, विरह, शराब, सूफ़ीवाद। * भारतीय संदर्भ में विकास: अमीर खुसरो से लेकर ग़ालिब, मीर और फ़ैज़ तक। * फिल्मी रूपांतरण: कैसे इस जटिल काव्य रूप को फिल्म के माध्यम तक पहुंचाया गया।

1.3. शोध का केंद्रीय उद्देश्य और अकादमिक महत्व * गहराई से समझना: हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल की केवल सतही भूमिका नहीं, बल्कि उनकी गहरी, मूलभूत और अनिवार्य उपस्थिति को स्थापित करना। * बहुआयामी विश्लेषण: उनकी कथात्मक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक भूमिकाओं का समानांतर विश्लेषण। * अकादमिक योगदान: इस क्षेत्र में मौजूदा साहित्य के अंतराल को भरना, विशेष रूप से 'स्वर्ण युग' के सिनेमाई सौंदर्यशास्त्र में इनके योगदान पर गहनता से प्रकाश डालना।

2. साहित्य समीक्षा

2.1. हिंदी फिल्म संगीत पर पूर्व अकादमिक और आलोचनात्मक कार्य * प्रारंभिक शोध: राजू भारतन, वामन केंद्रे, अशोक रानाडे (जैसे "Hindustani Music: A Listener's Guide") द्वारा फिल्म संगीत के इतिहास और तकनीकी पहलुओं पर किए गए कार्य। * संरचनात्मक विश्लेषण: डेविड डेविडर ("Bollywood: A History") और नसरीन मुन्नी कबीर ("Talking Films") जैसे लेखकों द्वारा फिल्म संगीत के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों पर चर्चा। * गीतकार और संगीतकार केंद्रित अध्ययन: विभिन्न जीवनी और संकलित कार्य जो व्यक्तिगत कलाकारों के योगदान पर प्रकाश डालते हैं। * जेम्स एलन सैंडर्स ("Celluloid Sultans"): भारतीय सिनेमा में लोकप्रिय संगीत के उद्भव और उसके सांस्कृतिक महत्व पर शोध। * पॉल ग्रीन ("Encyclopedia of Musical Film"): फिल्म संगीत को एक वैश्विक संदर्भ में देखता है, जहां भारतीय सिनेमा को अक्सर एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में अध्ययन किया जाता है।

2.2. भारतीय काव्य और संगीत परंपराओं का विश्लेषण: गीत और ग़ज़ल के मूल पर * उर्दू शायरी पर काम: ग़ालिब, मीर, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ जैसे शायरों के ग़ज़ल संकलन और उन पर आलोचनात्मक टिप्पणियां (जैसे शम्सुर रहमान फ़ारूक़ी का "Ghazal ki Sheri"). * शास्त्रीय संगीत का प्रभाव: भारतीय शास्त्रीय संगीत (हिंदुस्तानी और कर्नाटक) का फिल्म संगीत पर प्रभाव, राग आधारित धुनों और शास्त्रीय गायन शैलियों का उपयोग। * लोक संगीत का एकीकरण: विभिन्न भारतीय क्षेत्रों के लोक गीतों का फिल्म संगीत में समावेशन।

2.3. मौजूदा साहित्य में महत्वपूर्ण अंतराल और वर्तमान शोध का अभिनव योगदान * समग्र एकीकरण का अभाव: अधिकांश शोध या तो संगीत के तकनीकी पहलुओं पर केंद्रित हैं या केवल सामाजिक प्रभाव पर। गीत और ग़ज़ल के कथात्मक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक एकीकरण पर एक समग्र, गहन विश्लेषण का अभाव है। * 'स्वर्ण युग' पर विशेष ध्यान: इस शोध का मुख्य ध्यान 1950-1980 के दशकों पर होगा, जो फिल्म संगीत के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जब गीत और ग़ज़ल अपने चरम पर थीं। यह उस काल की विशिष्टताओं को उजागर करेगा। * गुणात्मक केस स्टडी: विशिष्ट फिल्मों और उनके गीतों/ग़ज़लों के माध्यम से सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से प्रदर्शित करना। * द्विपक्षीय दृष्टिकोण: केवल गीत या केवल ग़ज़ल पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, दोनों शैलियों के तुलनात्मक महत्व और उनके सहजीवी संबंध का पता लगाना।

3. हिंदी फिल्मों में गीत का महत्व: कथा, भावना और चरित्र-चित्रण

3.1. कथात्मक अनिवार्यता: कहानी को आगे बढ़ाने का एक माध्यम * कथानक में ट्विस्ट और मोड़: गीत अक्सर कहानी में महत्वपूर्ण घटनाओं की शुरुआत करते हैं या परिणामों को प्रकट करते हैं। उदाहरण: गाइड (1965) में "कांटों से खींच के ये आँचल" के बाद राजू और रोजी के रिश्ते में एक नया मोड़ आता है। * समय और स्थान का परिवर्तन: एक गीत पूरे कालखंड या भौगोलिक परिवर्तन को संक्षिप्त रूप से दर्शा सकता है। उदाहरण: बॉबी (1973) में "हम तुम एक कमरे में बंद हों"। * आंतरिक एकालाप (Inner Monologue): पात्रों के अव्यक्त विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम, जिसे संवादों से नहीं दर्शाया जा सकता।

3.2. भावनात्मक अभिव्यक्ति और मनोवैज्ञानिक गहराई * प्रेम और रोमांस: हिंदी फिल्मों का मुख्य आधार। गीत प्रेमियों की भावनाओं की पराकाष्ठा को दर्शाते हैं। उदाहरण: दिल एक मंदिर (1963) में "दिल एक मंदिर है"। * दुख, पीड़ा और त्रासदी: पात्रों के गहरे दुख, निराशा और वियोग को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करना। उदाहरण: प्यासा (1957) में "आज सजन मोहे अंग लगा लो"। * खुशी, उत्सव और विजय: जीवन के उल्लासपूर्ण क्षणों को दर्शाने वाले गीत। उदाहरण: झनक झनक पायल बाजे (1955) में शास्त्रीय नृत्य पर आधारित गीत। * सामाजिक और दार्शनिक संदेश: कुछ गीत सामाजिक बुराइयों पर टिप्पणी करते हैं या जीवन के गहरे दार्शनिक पहलुओं पर विचार करते हैं। उदाहरण: अराधना (1969) में "मेरे सपनों की रानी कब आएगी तू"।

3.3. चरित्र-चित्रण और पात्र विकास * पात्रों के व्यक्तित्व का अनावरण: गीत एक पात्र के स्वभाव, उसकी आकांक्षाओं या उसके आंतरिक द्वंद्वों को उजागर करते हैं। उदाहरण: आवारा (1951) में "आवारा हूँ" एक सामाजिक विद्रोही की पहचान को स्थापित करता है। * संबंधों की गतिशीलता: दो पात्रों के बीच के रिश्ते की बारीकियों को दर्शाना। उदाहरण: पति पत्नी और वो (1978) में "ठंडी हवा, काली घटा"। * पहचान की खोज: कई फिल्मों में नायक या नायिका अपनी पहचान या उद्देश्य की खोज में गीत गाते हैं।

3.4. सामाजिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रभाव * लोकप्रिय संस्कृति का निर्माण: फिल्मी गीत अक्सर राष्ट्रीय चेतना का हिस्सा बन जाते हैं, जो भाषा, फैशन, त्योहारों और सामाजिक समारोहों को प्रभावित करते हैं। * पीढ़ियों को जोड़ना: पुराने गीत आज भी नई पीढ़ियों द्वारा सुने और सराहे जाते हैं, सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाते हैं। * सामाजिक बदलाव का दर्पण: गीत अक्सर अपने समय के सामाजिक-राजनीतिक माहौल, आशाओं और संघर्षों को दर्शाते हैं। उदाहरण: विभाजन के बाद के गीतों में राष्ट्रवाद और आशा का संचार।

4. हिंदी फिल्मों में ग़ज़ल का महत्व: काव्य, दर्शन और शास्त्रीय परंपरा

4.1. ग़ज़ल का विशिष्ट काव्यात्मक सौंदर्य और गहन अर्थ * संरचनात्मक उत्कृष्टता: रदीफ़, काफ़िया और बह्र का सूक्ष्म उपयोग जो ग़ज़ल को उसकी संगीतमयता और लय देता है। * बहुस्तरीय अर्थ: एक ही शेर में कई अर्थों की परतें होना, जिससे श्रोता अपनी समझ के अनुसार उसकी व्याख्या कर सकें। * प्रतीकात्मकता और रूपक: प्रतीकों (जैसे साकी, जाम, महबूब) के माध्यम से गहरे मानवीय अनुभवों को व्यक्त करना। * उर्दू भाषा की नज़ाकत: उर्दू की मधुरता और उसके विशिष्ट शब्दों का प्रयोग जो ग़ज़ल को एक विशेष आभा प्रदान करता है।

4.2. ग़ज़ल के माध्यम से गहन भावनात्मक और दार्शनिक अभिव्यक्ति * विरह और तन्हाई: वियोग और अकेलेपन की भावनाओं को इतनी सुंदरता से व्यक्त करना कि वे सार्वभौमिक बन जाएं। उदाहरण: उमराव जान (1981) में "दिल चीज़ क्या है आप मेरी जान लीजिए"। * प्रेम की जटिलता: प्रेम के आध्यात्मिक (इश्क़-ए-हक़ीक़ी) और लौकिक (इश्क़-ए-मिज़ाजी) दोनों

पहलुओं को गहराई से छूना। * जीवन, मृत्यु और नियति पर विचार: अस्तित्ववादी प्रश्न और मानवीय दशा पर चिंतन। उदाहरण: बाज़ार (1982) में "फिर छिड़ी रात बात फूलों की"। * आध्यात्मिक खोज: कुछ ग़ज़लें सूफ़ी दर्शन और ईश्वर की तलाश को दर्शाती हैं।

4.3. ग़ज़ल के प्रमुख फिल्मी गीतकार, संगीतकार और गायक * संगीतकार: मदन मोहन (जिन्हें 'ग़ज़लों का शहंशाह' कहा जाता है, अनपढ़, दस्तक), खय्याम (उमराव जान, बाज़ार), जयदेव (किनारे किनारे)। * गीतकार: साहिर लुधियानवी, कैफ़ी आज़मी, मजरूह सुल्तानपुरी, गुलज़ार। * गायक: बेगम अख्तर, जगजीत सिंह (फिल्मी और गैर-फिल्मी ग़ज़लें), लता मंगेशकर, मोहम्मद रफ़ी।

4.4. ग़ज़ल की क्लासिक अपील और हिंदी सिनेमा पर उसकी स्थायी विरासत * शास्त्रीय परंपरा का निर्वाह: ग़ज़लें अक्सर भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागों पर आधारित होती हैं, जिससे वे एक क्लासिक अनुभव प्रदान करती हैं। * कालातीत आकर्षण: ग़ज़लें आज भी अपनी काव्य गुणवत्ता और भावनात्मक गहराई के कारण प्रासंगिक हैं। * सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक: उर्दू भाषा और शायरी की एक महत्वपूर्ण शैली के रूप में, ग़ज़ल भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

5. 1950-1980 का 'स्वर्ण युग': गीत और ग़ज़ल का चरमोत्कर्ष

5.1. इस अवधि में संगीतकारों और गीतकारों का अभूतपूर्व सहयोग * संगीतकार: * नौशाद: शास्त्रीय संगीत का फिल्म में सफल एकीकरण (बैजू बावरा, मुग़ल-ए-आज़म)। * एस.डी. बर्मन: लोक संगीत और बंगाली धुनों का प्रयोग (गाइड, प्यासा)। * शंकर-जयकिशन: मधुर और लोकप्रिय धुनें (आवारा, मेरा नाम जोकर)। * आर.डी. बर्मन: पश्चिमी संगीत का प्रभाव, नए प्रयोग (शोले, अमर प्रेम)। * मदन मोहन और खय्याम: ग़ज़लों के विशेषज्ञ। * गीतकार: * साहिर लुधियानवी: सामाजिक-राजनीतिक चेतना और दार्शनिक गहराई (प्यासा, नया दौर)। * शैलेंद्र: सरल लेकिन प्रभावी काव्य (आवारा, गाइड)। * हसरत जयपुरी: रोमांटिक गीत (संगम, अंदाज़)। * आनंद बख्शी: जनप्रिय गीत (अमर प्रेम, बॉबी)। * गुलज़ार: काव्यात्मक और प्रतीकात्मक गीत (मौसम, आँधी)। * गायक: लता मंगेशकर, मोहम्मद रफ़ी, किशोर कुमार, आशा भोसले, मन्ना डे – इन सबकी अद्वितीय आवाज़ों ने गीतों और ग़ज़लों को अमर कर दिया।

5.2. कथात्मक एकीकरण और दृश्य-श्रव्य सामंजस्य * निर्देशक का दृष्टिकोण: राज कपूर, गुरु दत्त, बिमल रॉय, महबूब खान जैसे निर्देशकों ने संगीत को अपनी फिल्मों की आत्मा के रूप में देखा। * फिल्मांकन की कला: गीतों का फिल्मांकन, जिसमें कोरियोग्राफी, कैमरा कार्य, सेट डिजाइन और कलाकारों का अभिनय संगीत के साथ पूर्ण सामंजस्य में होता था। * उदाहरण: मुग़ल-ए-आज़म (1960) में "मोहे पनघट पे" और "जब प्यार किया तो डरना क्या" के भव्य दृश्य और उनका कथात्मक महत्व। प्यासा (1957) में "ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है" का दुखद फिल्मांकन।

5.3. दर्शकों पर सांस्कृतिक और भावनात्मक जुड़ाव * सामूहिक स्मृति का निर्माण: इस युग के गीत और ग़ज़ल भारतीय सामूहिक चेतना का हिस्सा बन गए। * पहचान का प्रतीक: ये गीत भारत की युवा पीढ़ी की आकांक्षाओं, प्रेम, संघर्षों और सपनों को दर्शाते थे। * रेडियो, ग्रामोफोन और संगीत कार्यक्रम: इन माध्यमों ने फिल्मी संगीत को घर-घर तक पहुँचाया, जिससे उनका सांस्कृतिक प्रभाव और भी गहरा हुआ। * वैश्विक मंच पर पहचान: राज कपूर की फिल्मों के गाने रूस जैसे देशों में भी लोकप्रिय हुए।

6. कार्यप्रणाली (Methodology)

6.1. गुणात्मक अनुसंधान दृष्टिकोण (Qualitative Research Approach) * व्याख्यात्मक घटना विज्ञान (Interpretive Phenomenology): व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों में गीत और ग़ज़ल के महत्व की गहराई को समझना। * पाठ विश्लेषण (Textual Analysis): गीतों के बोल, उनकी काव्य-शैली और संरचना का सूक्ष्म विश्लेषण। * दृश्य-श्रव्य विश्लेषण (Audiovisual Analysis): चुने हुए गीतों और ग़ज़लों के फिल्मांकन, संगीत व्यवस्था, गायन शैली और अभिनेताओं के प्रदर्शन का अध्ययन।

6.2. डेटा संग्रह के तरीके * प्राथमिक डेटा: * 1950-1980 के दशक की कम से कम 20-25 प्रतिनिधि हिंदी फिल्मों का चयन। * इन फिल्मों के प्रमुख गीतों और ग़ज़लों की ऑडियो-विज़ुअल रिकॉर्डिंग। * गीतकारों और ग़ज़लकारों के मूल काव्य संग्रह। * द्वितीयक डेटा: * हिंदी सिनेमा के इतिहास, संगीत, और संस्कृति पर अकादमिक किताबें, शोध लेख, और पत्रिकाएं। * संगीत समीक्षकों, फिल्म इतिहासकारों और सांस्कृतिक विश्लेषकों द्वारा लिखी गई समीक्षाएं और निबंध। * साहित्यिक

आलोचनाएं, विशेषकर उर्दू शायरी और ग़ज़ल पर। * प्रमुख फिल्म निर्माताओं, संगीतकारों, गीतकारों और गायकों के प्रकाशित साक्षात्कार या आत्मकथाएं।

6.3. विश्लेषण के फ्रेमवर्क * नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण (Ethnographic Approach): फिल्म संगीत के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों का विश्लेषण। * औपचारिक विश्लेषण (Formal Analysis): संगीत की संरचना, रागों का प्रयोग, वाद्ययंत्रों का चयन और गायन शैली का अध्ययन। * अर्ध-विज्ञान विश्लेषण (Semiotic Analysis): गीतों और ग़ज़लों में प्रयुक्त प्रतीकों, रूपकों और उनके अर्थों का अन्वेषण।

7. निष्कर्ष

7.1. शोध प्रश्नों का पुनरावलोकन और प्रमुख निष्कर्ष * गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा के कथात्मक ढांचे के लिए अपरिहार्य तत्व हैं, जो संवादों से परे जाकर कहानी को गति, गहराई और भावनात्मक प्रतिध्वनि प्रदान करते हैं। * 1950-1980 का 'स्वर्ण युग' वह काल था जब इन शैलियों ने न केवल सिनेमाई सौंदर्यशास्त्र को परिभाषित किया, बल्कि भारतीय दर्शकों की सामूहिक सांस्कृतिक स्मृति का भी निर्माण किया, जिससे एक गहरा भावनात्मक और सांस्कृतिक जुड़ाव स्थापित हुआ। * समय के साथ इनके रूप, प्रस्तुति और सामाजिक प्रभाव में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं, जो हिंदी सिनेमा के बदलते परिदृश्य को दर्शाते हैं।

7.2. हिंदी सिनेमा पर गीत और ग़ज़ल का स्थायी और गहन प्रभाव * एक कलात्मक अनिवार्यता: वे केवल "फिलर" नहीं हैं, बल्कि फिल्म के कलात्मक और संवेदी अनुभव को समृद्ध करने वाले आवश्यक घटक हैं। * सांस्कृतिक विरासत के वाहक: इन्होंने भारतीय काव्य, संगीत और नृत्य परंपराओं को एक बड़े दर्शक वर्ग तक पहुँचाया है। * पहचान का स्रोत: हिंदी फिल्मों के गीत और ग़ज़ल आज भी भारतीयों की पहचान और भावनाओं से गहराई से जुड़े हुए हैं।

7.3. वर्तमान परिदृश्य और भविष्य के लिए सिफारिशें * आधुनिक फिल्म संगीत में परिवर्तन: पॉप, रैप और पश्चिमी शैलियों के बढ़ते प्रभाव के बावजूद, गीत और ग़ज़ल का मूल सार अभी भी मौजूद है। * पुनरुत्थान और प्रयोग: समकालीन फिल्म निर्माता अभी भी इन शैलियों के साथ प्रयोग कर रहे हैं, उन्हें नए संदर्भों में ढाल रहे हैं। * भविष्य के शोध के लिए क्षेत्र: * डिजिटल युग में फिल्म संगीत का उपभोग और उसका प्रभाव। * क्षेत्रीय भारतीय सिनेमा में गीत और ग़ज़ल का तुलनात्मक अध्ययन। * फिल्म संगीत के माध्यम से लिंग, वर्ग और पहचान का प्रतिनिधित्व। * कृत्रिम बुद्धिमत्ता और संगीत निर्माण के उभरते रुझान।

8. संदर्भ (References)

- Bharatan, Raju. A Journey Down Melody Lane. New Delhi: Indus, 1995.
- Kabir, Nasreen Munni. Talking Films. New Delhi: Oxford University Press, 1999.
- Ranade, Ashok Da. Hindustani Music: A Listener's Guide. New Delhi: Promilla & Co., 2006.
- Sanders, James Alan. Celluloid Sultans: The Film Industry and Popular Music in India, 1930s-1970s. University of California, Santa Barbara, 2011. (Ph.D. Dissertation)
- Farooqi, Shamsur Rahman. Ghazal ki Sheri aur Lisani Haisiyat. Delhi: Ghalib Academy, 1999. (Urdu Text)
- **फिल्मोग्राफी (Filmography):**
- आवारा (1951) - निर्देशक: राज कपूर
- बैजू बावरा (1952) - निर्देशक: विजय भट्ट
- प्यासा (1957) - निर्देशक: गुरु दत्त
- नया दौर (1957) - निर्देशक: बी.आर. चोपड़ा
- मुग़ल-ए-आज़म (1960) - निर्देशक: के. आसिफ
- गाइड (1965) - निर्देशक: विजय आनंद
- दस्तक (1970) - निर्देशक: राजिंदर सिंह बेदी
- पाकीज़ा (1972) - निर्देशक: कमाल अमरोही
- अमर प्रेम (1972) - निर्देशक: शक्ति सामंत

साहित्य, सिनेमा और मीडिया : अंतर्संबंध

श्री. निलेश वसंतराव जाधव
शोध छात्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय,कोल्हापुर।

शोध सार-

साहित्य, सिनेमा और मीडिया आधुनिक सांस्कृतिक प्रणाली के वे केंद्रीय स्तंभ हैं जो समाज की वैचारिक, संवेदनात्मक और सौंदर्यात्मक चेतना को दिशा प्रदान करते हैं। साहित्य मानव अनुभव का शब्दात्मक रूप है, सिनेमा उसकी दृश्यात्मक प्रस्तुति तथा मीडिया उसका त्वरित और व्यापक संप्रेषण माध्यम। साहित्य का इतिहास वैदिक काव्य से वर्तमान डिजिटल साहित्य तक फैला हुआ है, जबकि सिनेमा दृश्य-कथा के रूप में बीसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मीडिया ने संचार प्रक्रिया को गतिशील बनाते हुए साहित्य और सिनेमा को वैश्विक मंच उपलब्ध कराया। साध्य-स्थिति में तीनों माध्यम तकनीक, OTT प्लेटफॉर्म, डिजिटल प्रकाशन तथा सोशल मीडिया के प्रभाव से नई दिशा ग्रहण कर रहे हैं। यद्यपि बाज़ारवाद, गुणवत्ता बनाम लोकप्रियता, सूचना-बाढ़ और फेक न्यूज़ जैसी चुनौतियाँ वर्तमान परिदृश्य को प्रभावित करती हैं, फिर भी यह त्रयी समाज में चिंतनशील संवाद और सांस्कृतिक जागरण का आधार बनी हुई है। भविष्य में साहित्यिक कथानक, सिनेमाई रूपांतरण और मीडिया विमर्श के माध्यम से समाज में परिवर्तन और लोकतांत्रिक चेतना का विकास संभव है।

बीज शब्द : साहित्य, सिनेमा, मीडिया, अंतर्संबंध, इतिहास……आदि।

प्रस्तावना -

मानव सभ्यता की सांस्कृतिक धारा कई माध्यमों से प्रवाहित होती है, जिनमें साहित्य, सिनेमा और मीडिया प्रमुख हैं। साहित्य मानवीय अनुभूति को शब्द देता है, सिनेमा उन शब्दों को दृश्य–श्रव्य रूप में संजोता है और मीडिया उन्हें समाज के व्यापक वर्ग तक पहुँचाकर संवाद को जन्म देता है। इस प्रकार ये तीनों माध्यम अकेले नहीं, बल्कि एक-दूसरे से जुड़े हुए सांस्कृतिक तंत्र का निर्माण करते हैं। आज की सूचना-प्रधान दुनिया में यह अंतर्संबंध और भी गहरा हो गया है क्योंकि तीनों माध्यम सामाजिक विचारधारा, जनमत, सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक विमर्श को निर्णायक रूप से प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि इनके ऐतिहासिक उद्भव, विकास और वर्तमान स्थिति को समझना आवश्यक है।

साहित्य का इतिहास और विकास -

1. प्रारंभिक साहित्यिक परंपरा : भारतीय साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत और प्राचीन है। वैदिक साहित्य (1500–600 ई.पू.) से लेकर उपनिषद, रामायण–महाभारत, बौद्ध–जैन काव्य, कालिदास, भक्ति-साहित्य, रीतिकाल, आधुनिक साहित्य तक यह यात्रा निरंतर गतिशील रही है। इन सभी युगों में साहित्य ने न केवल जीवन की सौंदर्यात्मक अनुभूतियों को व्यक्त किया, बल्कि समाज के सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को भी संरक्षित किया।[1]

2. आधुनिक साहित्य का स्वरूप : आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, नई कहानी, नई कविता और समकालीन लेखन की धाराओं ने साहित्य को समाज के संघर्षों, अंतर्विरोधों और यथार्थों से जोड़ा। साहित्य की यही वैचारिक शक्ति बाद में सिनेमा और मीडिया के लिए प्रेरणा-स्रोत बनी।

सिनेमा का इतिहास और साहित्य से उसका संबंध:

सिनेमा का उद्भव और विकास

सिनेमा का आरंभ 1895 में फ्रांस के ल्यूमियर ब्रदर्स से माना जाता है। भारत में 1913 में दादासाहेब फाल्के की राजा हरिश्चंद्र पहली फिल्म मानी जाती है। सिनेमा प्रारंभ से ही साहित्य के प्रभाव में रहा है, क्योंकि कथा, चरित्र और संवाद साहित्य से ही मिलते हैं।

साहित्यिक कृतियों का सिनेमाई रूपांतरण :

भारतीय सिनेमा के इतिहास में अनेक क्लासिक फिल्में साहित्य से रूपांतरित होकर बनीं—

1. देवदास (शरतचंद्र चट्टोपाध्याय) - शरतचंद्र की देवदास प्रेम, सामाजिक मर्यादा और आत्मविनाश के त्रिकोण पर आधारित उपन्यास है। इसका सिनेमाई रूपांतरण (1935, 1955, 2002 आदि) भारतीय फिल्म इतिहास में अमर माना जाता है। फिल्म में

नायक की भावनात्मक जटिलता तथा पारो और चंद्रमुखी के माध्यम से स्त्री-मन का गहरा चित्रण हुआ है। साहित्यिक संवेदना को दृश्यात्मक रूप देते हुए सिनेमा ने पात्रों को सांस्कृतिक प्रतीक बना दिया। यह रूपांतरण सिद्ध करता है कि फिल्मों में भावभूमि और चरित्र-निर्माण साहित्य से ही समर्थित होते हैं।

2. गाइड (आर. के. नारायण) - आर.के. नारायण के उपन्यास गाइड पर आधारित देव आनंद अभिनीत फिल्म (1965) आत्म-खोज, स्वतंत्रता और आंतरिक संघर्ष पर केंद्रित है। उपन्यास में नायक राजू का आध्यात्मिक और सामाजिक द्वंद्व फिल्म में भी संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया। सिनेमा ने कहानी में रोमांटिक और दार्शनिक तत्वों को दृश्यात्मक विस्तार देकर इसे लोकप्रिय बना दिया। फिल्म में गीत, अभिनय और संवादों ने साहित्य की शक्ति को जनसंचार में परिवर्तित किया। यह साहित्य से प्रेरित आधुनिक चरित्र-केन्द्रित फिल्मों का उत्कृष्ट उदाहरण है।

3. शतरंज के खिलाड़ी (मुंशी प्रेमचंद)- प्रेमचंद की कहानी शतरंज के खिलाड़ी पर सत्यजीत रे द्वारा बनाई गई फिल्म (1977) भारतीय सिनेमा की श्रेष्ठ कृतियों में गिनी जाती है। इसमें 1856 के नवाबी काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सामाजिक निष्क्रियता और राजनीतिक उदासीनता को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया। साहित्यिक कथानक को सिनेमा ने ऐतिहासिक दस्तावेज जैसा रूप प्रदान किया। पात्रों की निष्क्रियता के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का गहरा संदेश दिया गया। यह फिल्म सामाजिक यथार्थ पर आधारित साहित्यिक रूपांतरण का सशक्त उदाहरण है।

4. गोदान (मुंशी प्रेमचंद)- गोदान प्रेमचंद का किसान जीवन पर आधारित महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें ग्रामीण यथार्थ, आर्थिक संघर्ष और सामाजिक विषमता का चित्रण है। फ़िल्म रूपांतरण (1963) ने होरी जैसे पात्र को जमीनी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया। सिनेमा ने साहित्यिक पीड़ा को दृश्य माध्यम से जनभावना में परिवर्तित किया। गोदान के माध्यम से साहित्य का समाजवादी दृष्टिकोण फिल्मों के द्वारा अधिक व्यापक हुआ। यह रूपांतरण सामाजिक संवेदना और यथार्थवादी कला का अद्भुत उदाहरण है।

5. साहब बीवी और गुलाम (बिमल मित्र)- बिमल मित्र के उपन्यास साहब बीवी और गुलाम पर आधारित फिल्म (1962) में परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष को भावनात्मक गहराई से प्रस्तुत किया गया। चोटीवाली (छोटी बहू) का चरित्र स्त्री की दबी संवेदनाओं और अस्तित्व संघर्ष का प्रतीक है। साहित्य के व्यापक मनोवैज्ञानिक पक्ष को सिनेमा ने गहन अभिनय और छायांकन द्वारा और प्रभावशाली बनाया। फिल्म में सामाजिक विघटन और पतनशील सामंती व्यवस्था को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया। यह साहित्य पर आधारित सबसे सफल भावनात्मक सिनेमाई रूपांतरणों में से एक माना जाता है। इन रूपांतरणों से स्पष्ट होता है कि सिनेमा का कथात्मक आधार साहित्य पर ही निर्भर रहा है ।[2]

मीडिया का इतिहास और सांस्कृतिक भूमिका :

1.मीडिया का आरंभ :मीडिया की यात्रा मौखिक परंपरा से शुरू होकर मुद्रण (प्रेस), रेडियो, टेलीविजन और आज के डिजिटल प्लेटफॉर्म तक विकसित हुई है। भारत में 19वीं शताब्दी की पत्र-पत्रिकाएँ—समाचार चंद्रिका, हिंदुस्तानी, अवध पंच—ने सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया।

2.आधुनिक मीडिया की विशेषताएँ : आज का मीडिया अत्याधुनिक तकनीक, त्वरित प्रसारण, वैश्विक पहुँच और इंटरैक्टिवता की विशेषता लिए हुए है। डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया ने संचार की प्रकृति को पूरी तरह बदल दिया है और साहित्य तथा सिनेमा दोनों को नई जमीन प्रदान की है ।[3]

साहित्य–सिनेमा–मीडिया का अंतर्संबंध-

1.विषय-वस्तु का परस्पर प्रवाह :तीनों माध्यम एक-दूसरे को सामग्री प्रदान करते हैं—साहित्य सिनेमा को कथा, चरित्र, भावभूमि और विचार देता है। सिनेमा साहित्य को दृश्य-शिल्प के रूप में नए पाठक उपलब्ध कराता है। मीडिया साहित्य और सिनेमा को चर्चा, समीक्षा और प्रचार के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाता है।

2.सांस्कृतिक विमर्श में संयुक्त भूमिका : महिला सशक्तिकरण, जाति-प्रश्न, पर्यावरण, राष्ट्रीयता, मानवाधिकार जैसे मुद्दों पर तीनों माध्यमों की संयुक्त भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है—साहित्य विचार देता है। सिनेमा भावनात्मक प्रभाव देता है। मीडिया सामाजिक विमर्श उत्पन्न करता है ।[4] जनमत-निर्माण:यह त्रयी जनमत को प्रभावित करने वाली सबसे शक्तिशाली इकाई बन चुकी है। उदाहरण—पिंक, आर्टिकल 15, दंगल, स्वदेस जैसी फिल्मों की सामाजिक भूमिका मीडिया और साहित्यिक विमर्श के कारण और भी मजबूत हुई।

साध्य–स्थिति

साहित्य की आधुनिक स्थिति : ई-लिटरेचर, ब्लॉग और डिजिटल पुस्तकें लोकप्रिय हो रही हैं। वैकल्पिक विमर्श (स्त्री, दलित, आदिवासी, क्वीयर साहित्य) प्रमुखता पा रहे हैं। साहित्यिक बहसें अब मीडिया और सोशल मीडिया के माध्यम से व्यापक रूप से फैल रही हैं।

सिनेमा की स्थिति :OTT प्लेटफॉर्म ने विषय-वस्तु की विविधता बढ़ाई।बायोपिक, डॉक्यूमेंट्री और वास्तविक घटनाओं पर आधारित फिल्में बढ़ी हैं।तकनीक (VFX, 3D, AI) ने सिनेमाई अभिव्यक्ति को बदल दिया है।

मीडिया की वर्तमान चुनौतियाँ : फेक न्यूज़ और प्रोपेगेंडा,TRP आधारित पत्रकारिता, राजनीतिक–आर्थिक प्रभाव, एल्गोरिद्म आधारित सूचना-प्रवाह फिर भी मीडिया लोकतंत्र का प्रमुख आधार बना हुआ है ।

तीनों की समकालीन चुनौतियाँ :

- बाज़ारवाद का दबाव :साहित्य की लोकप्रियता, सिनेमा का बॉक्स-ऑफिस, और मीडिया का TRP—तीनों में बाज़ार दबाव बढ़ा है।
- नैतिकता और जिम्मेदारी :फेक न्यूज़, सनसनीखेज रिपोर्टिंग, सिनेमा में अति-व्यावसायीकरण, साहित्य में कॉपी-पेस्ट लेखन—यह सभी चुनौतियाँ हैं।
- तकनीकी परिवर्तन : AI आधारित लेखन, डिजिटाइजेशन और वर्चुअल तकनीक से साहित्यकार, फिल्मकार और पत्रकार नई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं।

भविष्य की संभावनाएँ : साहित्यिक कृतियों का फिल्म एवं वेब-सीरीज़ में रूपांतरण और बढ़ेगा। मीडिया साहित्यिक परिचर्चा को नए रूप देगा (पॉडकास्ट, लाइव सेशन, डिजिटल मैगज़ीन)। सिनेमा में यथार्थवादी व वैकल्पिक विषयों की वृद्धि होगी।डिजिटल प्लेटफॉर्म नए लेखक, फिल्मकार और पत्रकार तैयार करेंगे।तकनीक के साथ इन माध्यमों की परस्पर निर्भरता और मजबूत होगी।

निष्कर्ष –

साहित्य, सिनेमा और मीडिया — ये तीनों न केवल सांस्कृतिक संप्रेषण के माध्यम हैं, बल्कि समाज के बौद्धिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक निर्माण में सक्रिय भागीदार भी हैं। साहित्य जीवन को शब्दों में रूपायित करता है, सिनेमा उन्हीं शब्दों को दृश्य-श्रव्य रूप में रूपांतरित कर मानवीय संवेदनाओं को विस्तृत करता है, तथा मीडिया इस संवेदना को तत्काल और वैश्विक आयाम प्रदान करके उसे सामाजिक चेतना में परिवर्तित करता है। इस प्रकार यह त्रयी आज की सांस्कृतिक संरचना की मेरुदंड कही जा सकती है।यदि साहित्य आत्मा है तो सिनेमा उसका शरीर है और मीडिया उसकी आवाज़। तीनों की संयुक्त भूमिका के बिना हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाएँ अधूरी मानी जाएँगी। आधुनिक युग में जहाँ सूचना-प्रौद्योगिकी ने संप्रेषण को तीव्र और सर्वसुलभ बनाया है, वहीं सामग्री की गुणवत्ता, संवेदनशीलता और नैतिकता की कसौटी भी आवश्यक हो गई है। साहित्यिक गहराई, सिनेमाई अभिव्यक्ति और मीडिया की प्रभावशीलता—इनका संतुलित उपयोग ही समाज को बौद्धिक रूप से अग्रसर कर सकता है।

वर्तमान परिस्थितियों में बाजारवाद, फेक न्यूज़, सनसनीखेज प्रस्तुतिकरण, साहित्यिक कृत्रिमता और सिनेमाई अति-व्यावसायीकरण जैसी चुनौतियाँ इस त्रयी के सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रश्नांकित करती हैं। किंतु प्रौद्योगिकी के सकारात्मक उपयोग, नैतिक पत्रकारिता, संवेदनशील फिल्म निर्माण और विचारोत्तेजक साहित्यिक लेखन के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान संभव है। डिजिटल मीडिया ने अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक स्वरूप दिया है, जिसके कारण आज सामान्य व्यक्ति भी साहित्य रच सकता है, फिल्म बना सकता है तथा सूचना साझा कर सकता है। यह परिवर्तन आने वाले समय में वैचारिक क्रांति का रूप ले सकता है। भविष्य की दृष्टि से साहित्यिक कथानक फिल्मों तथा वेब-सीरीज़ में अधिकाधिक रूपांतरित होंगे, जबकि मीडिया इनके प्रचार और विमर्श के माध्यम से सामाजिक प्रभाव को विस्तार देगा। तकनीक आधारित इंटरऐक्टिव मंच (जैसे पॉडकास्ट, लाइव डायलॉग, वर्चुअल थिएटर) इस अंतर्संबंध को नए स्वरूप में प्रस्तुत करेंगे। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के दौर में जहाँ

रचनात्मकता को मशीन चुनौती दे रही है, वहीं मानवीय भावनात्मकता और संवेदनशीलता का संरक्षण साहित्य, सिनेमा और मीडिया की जिम्मेदारी बन जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि इन तीनों माध्यमों का संबंध केवल अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का साधन भी है। एक उत्तरदायी, जागरूक और संवेदनशील समाज के निर्माण हेतु साहित्य की गहराई, सिनेमा की सृजनात्मक शक्ति और मीडिया की तात्कालिकता का समन्वित प्रयोग अनिवार्य है। यही अंतर्संबंध भविष्य की सांस्कृतिक दिशा और लोकतांत्रिक चेतना का आधार बनेगा।

संदर्भ :

1. नामवर सिंह, साहित्य का समाजशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, 2001।
2. अरविंद कुमार, भारतीय सिनेमा का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2018।
3. शंभूनाथ, मीडिया विमर्श, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2012।
4. उमेश अग्रवाल, साहित्य और सिनेमा, साहित्य अकादमी, 2016।
5. मैक्लुहान, मार्शल, Understanding Media, MIT Press, 1964।
6. गौतम कैवल्य, डिजिटल मीडिया और समाज, प्रभात प्रकाशन, 2020।

*****

आयदान आत्मकथा : एक सांस्कृतिक परिदृश्य

डॉ. प्राजक्ता अंकुश रेणुसे
सहायक प्रोफेसर,हिंदी विभाग,
श्री शहाजी छ. महाविद्यायालय, केल्हापुर
संपर्क - 8551829188
Email:- prajurenuse30@gmail.com

शोध आलेख का सारांश : -

उर्मिला पवार की आत्मकथा 'आयदान' मराठी दलित स्त्री आत्मकथाओं में एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है। प्रस्तुत आत्मकथा को सौ. माधवी प्र. देशपांडे ने हिंदी में अनूदित की है। यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत जीवन की कथा नहीं, बल्कि दलित समाज, स्त्री जीवन और श्रम-संस्कृति का दस्तावेज है। प्रस्तुत शोधपत्र में 'आयदान' को एक सांस्कृतिक परिदृश्य के रूप में देखते हुए उसमें निहित लोकजीवन, परंपराएँ श्रम-संस्कृति, जातिगत संरचनाएं और स्त्रीचेतना का विश्लेषण किया है।

बीज शब्द : आयदान - बांस की टोकरी, नारी-अस्मिता - स्त्री की पहचान और स्वाभिमान, संवेदना - मानवीय करुणा और भावना, यथार्थ - जीवन का सच्चा चित्रण।

प्रस्तावना :-

'संस्कृति' किसी भी समाज की पहचान होती है। यह जीवन जीने की पद्धति, मूल्य, व्यवहार, कला, भाषा और परंपराओं से निर्मित होती है। भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन और विविध संस्कृतियों में से एक हैं। श्री नवलजी ने नालन्दा विशाल शब्दसागर में 'संस्कृति' शब्द का अर्थ देते हुए कहा है- "संस्कृति (संज्ञा स्त्री. (सं.) किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती है। क्लचर।"[1] भारतीय संस्कृति अपनी विविधता, सहिष्णुता, आध्यात्मिक कला और समन्वय की भावना के लिए प्रसिद्ध है, जहाँ विभिन्न भाषाएँ, धर्म, परंपरा और आधुनिक युग में विज्ञान, तकनीक और वैश्वीकरण के प्रभाव से संस्कृति में नए तत्व जुड़ रहे हैं, फिर संस्कृति समाज को नैतिक मूल्यों, सामाजिक पहचान और सामूहिक चेतना में जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। विभिन्न कोशों में लोकसंस्कृति के अलग अर्थ दिए गए है-जैसे कि 'भाषा शब्दकोश' में इसका अर्थ है "जगत् के जीवधारियों द्वारा की गई शुद्धि सफाई, सुधार, परिष्कार, लोकसंस्कृति कहलाती है।"[2] हिंदी विश्वकोश में कहा गया है कि "उस सामान्य रूप को लोकसंस्कृति का धरातल कहा जा सकता है, जिसमें जनसाधारण को परंपराएँ, रीति-नीतियाँ, प्रथाएँ, लोक-विश्वास आदि समाविष्ट होंगे।"[3] इसप्रकार अलग-अलग विद्वानों ने लोकसंस्कृति को परिभाषित किया है। अतः यहाँ पर आयदान आत्मकथा को सांस्कृतिक परिदृश्य का विवेचन विश्लेषण करते है।

विषय विवेचन :-

'आयदान' आत्मकथा मूल मराठी की उर्मिला पवार की प्रचलित आत्मकथा है इसे सौ.माधवी प्र. देशपांडे ने हिंदी में अनूदित की है। प्रस्तुत आत्मकथा में दलित स्त्रीवाद का स्पष्ट चित्रण है। जाति और लिंग दोनों की चुनौती दिखाई देती है। 'आयदान' बांस से बनी वस्तु का सामान्य अर्थ टोकरियाँ हैं। जो प्रतीकात्मक रूप से मेहनतकश जीवन श्रम और हाशिए पर पड़े समाज का संकेत देता है। इसके साथ-साथ सांस्कृतिक परिवेश को भी उजागर करती है।

आयदान आत्मकथा में दलित और सवर्णों के प्रति उच-निचता का भेदभाव झलकता है "एक दिन नदी में दलितों के हिस्से में मराठों ने अपने मवेशी, पानी पीने के लिए डाल दिए थे। मवेशियों के पैरों से सारा पानी गन्दला हो गया था तथा कीचड़ नीचे बैठने की राह देखती दलित स्त्रियों को घण्टों रुकना पड़ता था। बैठक में इस घटना का वर्णन कर एक ने कहा कि हमारा पीने का पानी भी गन्दा कर देते हैं।"[4] प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से लेखक ने अपने व्यक्तिगत जीवनाभुवों के माध्यम से दलित समाज की सवर्ण और निम्नवर्ग के उचनिचता को दर्शाया है। आत्मकथा में सांस्कृतिक परिदृश्य ग्रामीण दलित समाज से गहराई से जुड़ा हुआ है। ग्रामीण परिवेश में जन्म, पालन-पोषण और जीवन संघर्ष लेखक की सांस्कृतिक पहचान को निर्मित करते हैं। यहाँ संस्कृति केवल पर्व-त्योहारों या परंपराओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जीवन जीने की पूरी प्रक्रिया का हिस्सा बन जाती है। बोली-भाषा, रहन-सहन, खान-पान, सामाजिक व्यवहार और आपसी संबंध ये सभी तत्व आयदान में सांस्कृतिक संरचना को स्पष्ट करते है।

जातिगत भेदभाव आयदान आत्मकथा के सांस्कृतिक परिदृश्य का केंद्रिय तत्व है। प्रस्तुत आत्मकथा के अंतर्गत महिला होने के साथ जातिवाद के कारण उन्हें किन-किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा है इसका जिक्र किया हुआ है। उर्मिला पवार कोंकण में अपना वास्तव्य करती है। पाठशाला जाते वक्त उन्होंने एक जातिवाद का अनुभव लिया। समाज में लोग वर्गभेद भी करते थे। उनकी पाठशाला में जहाँ पर मूल्य शिक्षण विषय के अंतर्गत सभी धर्म समान हैं यह मूल्य सिखाया जाता है। उसी जगह हमें ऐसा उदाहरण दिखाई देता है कि पाठशाला के अध्यापक ही जातिभेद करते है। उर्मिला के पिता शिक्षक बनने के बाद इसी पाठशाला के दूसरे ब्राह्मण शिक्षक अध्यापकों ने अपनी पाठशाला अपने आँगन में लगाने लगे और छात्रों-छात्रों में जातिभेद करने लगे। "शिक्षक इन अछूत बच्चों से दूर से ही पढ़ाते, स्लेट पट्टी दूर से ही जाँचते तथा गलती होने पर दूर से ही कंकड या मिट्टी का ढेला फैंककर मारते थे। ऐसे वातावरण में गोविंद दादा और बाबी का मन स्कूल में नहीं लगता था वे आये दिन स्कूल से तड़ी जाते थे।"[5]

जहाँ पर सर्वधर्म समभाव की शिक्षा देना जरूरी होता है वही पर अस्पृश्यता एवं जाति व्यवस्था को बढ़ावा दिया जा रहा था। इससे स्पष्ट होता कि एक अध्यापक ही जातिव्यवस्था का अगर जिक्र करें तो समाज में परिवर्तन कैसा हो जाएगा। आत्मकथा में वर्णित घटनाएं यह स्पष्ट करती हैं कि किस प्रकार ऊँची जातियों की संस्कृति सामाजिक प्रभुत्व स्थापित करती है और दलित संस्कृति को हीन माना जाता है। सामाजिक व्यवहार, भाषा और परंपराओं के माध्यम से यह भेदभाव पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। 'आयदान' आत्मकथा सांस्कृतिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना को अभिव्यक्त करती है। एक तरफ भारत प्रजासत्ताक हो रहा हो तो दूसरी जगह जातिवादी मानसिकता के कारण दलित समाज का शोषण हो रहा है। हिन्दी दलित आत्मकथाएँ एक मूल्यांकन में पुनीता जैन का वक्तव्य है कि "वस्तुस्थिति यह भी है कि वर्तमान परिदृश्य में अम्बेडकर विचार से प्रेरित राजनीतिक चेतना भी दलितों के मूलभूत जीवन अधिकारों, मानव अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाई है। वस्तुतः वर्चस्वशाली प्रवृतियाँ हर जगह अपनी जड़े जमा लेती है।"[6] स्पष्ट है कि जोखिम उठाए बिना मुक्ति मिलना असंभव है। आज भी समाज में परिवर्तन उतनी मात्रा में नहीं मिलता। दलित समाज की स्थिति बहुत दयनीय बन गई है।

सवर्ण हो या अछूत हर जाति के अपने रीतिरिवाज या संस्कृति होती है दलित समाज उनकी संस्कार के अनुसार त्योहार मनाते है। देवी देवताओं की पूजा-अर्चा के साथ आंबेडकर जयंती, बुद्ध पोर्णिमा आदि उत्सव के तौर पर सांस्कृतिक समारोह मनाते हैं। डॉ. भरत सगरे धर्म के संदर्भ में कहते हैं- "धर्म नैतिक-अनैतिक सत्य, असत्य, पाप-पुण्य को स्पष्ट करनेवाली संकल्पना हैं। धर्म के कारण देवी-देवता, उत्सव पर्व, धार्मिक व्यक्ति, धार्मिक क्षेत्र को महत्व प्राप्त होता है।"[7] प्रस्तुत कथन से विदित होता है कि लोगों के मन में भगवान के प्रति आस्था हैं। दलित वर्गों पर होने वाले अन्याय और अत्याचारों से बचने हेतु दलित वर्ग भगवान को आराध्य दैवत मानकर उनकी पूजा करते है ताकि अन्यायग्रस्त परिस्थति में वे बच सकें। उर्मिला पवार कोंकण में रहती है। कोंकण प्रांत में दलित समाज में होली का त्योहार मनाया जाता है। आयदान आत्मकथा में 'तेरसा शिमगा' के त्योहार का वर्णन किया है। गाँव के युवा जवान लड़के त्योहार आने से पहले नदी के पार की पहाड़ पर चंडकी देवी के पास जाते हैं। वहाँ जाकर जंगल से सूखे घास को इकट्ठा करते हैं। सूखे घास से चंडकी देवी को पत्थर से ढाँक लेते हैं और देवी माँ को हल्दी-कुंकम और नारियल फोड़कर पूजा की जाती है। फिर वह पत्थर जलाया जाता है। त्योहार गाँव के घरों में अलग-अलग समय में मनाया जाना है "तेरसा शिमगा की देखा-देखी कुछ गाँवों में आठवें या नौंवे दिन ही होली जलने लगी, इसे 'समय की होली' कहा जाता था। इस होली के अलावा पूर्णिमा को मनायी जानेवानी होली सभी के लिए होती थी। इसके बाद भी कुछ गाँवों में होली जलती थी, इसे 'भद्र शिमगा' कहा जाता था। पूनम तक सब को होली देखकर गरिबों को दुःख होता था सो वे सबके आखिर में अपनी होली जलाकर खुशी जाहिर करते थें। इसके बाद सब भद्र होगा अर्थात भला होगा, ऐसी मान्यता थी।"[8] होली के त्योहार पर ब्राहमण और मराठों के घर में दाल और गुठ की पुरणपोली बनती। उर्मिला पवार दलित परिवार की थी। उनकी भाभी पुरणपोली मिले इसलिए गाँव की औरतों के साथ भीक माँगने जाती है। लेकिन उन्हें तो सिर्फ बासी की भाकरी के टुकडे और चावल मिलते हैं, पुरणपोली नहीं मिलती। स्पष्ट है कि दलित त्योहार मनाते हैं लेकिन त्योहारों के दिन ब्राह्मण और मराठों के घर जो पकवान बनता है वह दलित परिवारों के घर में आर्थिक विपन्नता के कारण नहीं बन पाता है। फिर भी वे हँसी-खुशी सभी त्योहारों का आनंद लेते हैं।

निष्कर्ष:-

दलित साहित्य ने शुद्र वर्ण की प्रश्नपीडित जिंदगी को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। सदियों से ब्राह्मणवादी व्यवस्था से शोषित वर्ग का शोषण हो रहा है। धार्मिक शोषण, आडंबर और अंधविश्वास के साथ सांस्कृतिक आयामों में मुस्लिम, दलित और विमुक्त घुमंतू समुदायों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण किया है। दलितों के साथ किए हुए परंपरागत चले आ रहे व्यवहार,

उन पर होनेवाले अन्याय, तथाकथित धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश प्रस्तुत आत्मकथा में झलकता है। दलित आत्मकथाकार दलित साहित्य के अनुसार समाज की पिछडी हुई मानसिकता को बदलने की आवश्यकता महसूस करते हैं।

डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के दलित आंदोलन के कारण गाँवों में थोडा-बहुत वैचारिक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। शहरों में रहनेवाले लोगों ने इन विचारों को आत्मसात किया है। इसलिए जातिप्रथा, छुआछूत जैसी परंपराओं को गाँव के दलितों को जितनी भुगतनी पड़ती है उतनी शहर में रहनेवाले लोगों को नहीं पड़ती। स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित युवकों को शिक्षा क्षेत्र में सहुलियत मिल रही है। जिससे वे समाज में अपना अस्तित्व निर्माण कर सकते हैं। क्योंकि पहले अंधविश्वास होने के कारण धर्म को आधार मानकर शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, रुढ़ी-परंपरा और धार्मिक आडंबर के जरिए दलित समाज का घिनौना रूप दिखाया जाता था। इसलिए अज्ञान के कारण दलित समाज देवी-देवताओं की पूजा, मेला, भंडारा, उत्सव आदि को महत्त्व देते थे। परिणामतः दलित समाज अंधविश्वासों में फँस जाता। इसप्रकार की मानसिकता का परिवर्तन आंबेडकर जी की वैचारिकता से हुआ है और दलित समाज के लोग अपने बच्चों को पाठशाला भेज रहे हैं।

अतः कहा जा सकता है कि 'आयदान' आत्मकथा दलित समाज के सांस्कृतिक जीवन, संघर्ष और चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज है। यह आत्मकथा व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामूहिक सांस्कृतिक यथार्थ को उजागर करती है। आयदान हाशिए के समाज की संस्कृति को साहित्यिक सम्मान प्रदान करते हुए सामाजिक न्याय और समानता की भावना को सुदृढ़ करती है।

संदर्भग्रंथ सूची –

1. संपा.-श्रीनवल जी - नालन्दा विशाल शब्द सागर, आदीश बुक डिपो-नई दिल्ली- संस्करण 2013, पृ. क्र.1388
2. रामचन्द्र वर्मा - मानक हिन्दी कोश, चौथा खंड सं.1965 पृ. क्र. 59
3. संपा- राहूल सांस्कृत्यायन- हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, बोडस भाग, , कृष्णदेव आध्याय (काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, सं 2017 पृ. क्र.11)
4. पवार उर्मिला - आयदान, अनु. - सौ. देशपांडे माधवी प्र., प्रथम संस्करण 2010, वाणी प्रकाशन, पृ. क्र.73
5. वही पृ. क्र. 28
6. जैन पुनीता हिन्दी दलित आत्मकथाएं एक मूल्याकन- सामासिक बुक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017 पृ. क्र. 307
7. डॉ. सगरे भरत- हिंदी आंचलिक दिव्य डिस्ट्रब्यूटर्स, कानपूर 2011 पृ. क्र. 69
8. पवार उर्मिला - आयदान, अनु. - सौ. देशपांडे माधवी प्र. प्रथम संस्करण 2010, वाणी प्रकाशन, पृ. क्र. 49,50

*****

"हिंदी साहित्य में गजल परंपरा और दुष्यंतकुमार का योगदान"

पूनम कुमार बरगाले
9665179201
poonambargale1984@gmail.com
श्रीमती गंगाबाई खिवराज घोडावत कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपूर.

शोध सारांश -

गजल उर्दू और फारसी साहित्य की एक प्रमुख काव्य विधा है, जिसने हिंदी साहित्य में भी अपनी अलग पहचान और शैली बनाई है। प्रारंभिक दौर में गजल का विषय मुख्यतः माशुका से प्रेम और प्रेम में विरह वेदना रहा, किंतु समय के साथ इसमें सामाजिक , राजनीतिक और मानवीय संवेदनाओं का समावेश हुआ। हिंदी गजल को नई दिशा देने में दुष्यंतकुमार का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने गजल को आम आदमी की पीड़ा और सामाजिक यथार्थ का स्वर प्रदान किया | ,दुष्यंतकुमार ने गजल की भावुकता और श्रृगांरिकता इन भावों को बदलकर गजल को यथार्थ ता और वास्तविकता प्रदान की |

बीज शब्द: गजल, रोमानियत, दुष्यंतकुमार, सामाजिक चेतना ,मानवीय संवेदना

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में गजल की अलग परंपरा रही है | गजल उर्दू और फारसी काव्य की लोकप्रिय और प्रसिद्ध विधा है | गजल हिंदी साहित्य से भिन्न होते हुए भी उससे गहराई से जुड़ी है। गजल ने हिंदी में पिछले दो दशकों में विशेष स्थान बनाया है। सामान्यतः प्रेम विषयक गजलें लोकप्रिय रही हैं, परंतु इसके साथ ही विरह, वेदना, अन्याय, शोषण और मानवीय संवेदनाओं को भी गजल ने अपने रोमानी शब्दों में अभिव्यक्ति दी है | गजल की पहचान आम तौर पर उसके खास शब्द और शैली से होती है | भारत में अमीर खुसरो से लेकर मीर, गालिब, फैज़ और दुष्यंतकुमार तक गजल ने निरंतर विकास किया है |

गजल की परिभाषा और स्वरूप :

गजल उर्दू काव्य की प्रमुख काव्य विधा है, उर्दु में गजल की परंपरा फारसी से आयी है | फारसी में 'रौदकी ' नामक कवि हो गये , जिनकी रचनाओं में गजल शैली के दर्शन हुए | 2. "गजल" शब्द अरबी भाषा से उत्पन्न है, जिसका मूल अर्थ स्त्रियों से या स्त्रियों के विषय में वार्तालाप करना है। 3 शुरुआती दौर में फारसी में गजल इसी विषय के इर्दगीर्द लिखी गयी |अरबी गजलकारों ने भी इसी परंपरा का निर्वाह किया |फारसी गजल ने अरबी गजल के इश्क़े-मजाज़ी को इश्क़े-हकीकी में रूपांतरित किया | फारसी गजल ने प्रेमी को साधक (सालिक)बना दिया तथा प्रेमिका को ब्रम्ह (माबूद) का दर्जा प्रदान कर दिया | 4

परिभाषा.

" गजल वह काव्य रूप है जिसमें समान छंद और समान तुकांत व्यवस्था के अंतर्गत स्वतंत्र किंतु भावात्मक रूप से संबद्ध शेरों (दो पंक्तियों वाले पदों) की रचना की जाती है। प्रत्येक शेर अपने आप में पूर्ण अर्थ रखता है, पर संपूर्ण गजल में एक अंतर्धारा विद्यमान रहती है |5

" शिल्प की दृष्टि से गजल काफ़िया और रदीफ़ के बंधन में रहकर एक लयबद्ध में रचे गए विभिन्न शेरों की माला होती है ,इसका पहला शेर "मतला" और अंतिम शेर "मक्ता" कहलाता है | 6

गजल का सामान्य रुप में अर्थ है प्रेमिका से वार्तालाप | इसलिए प्रेम यह गजल का प्रमुख विषय रहा है और प्रेमियों के बीच के वार्तालाप में श्रृंगार और रसिकता का होना अनिवार्य है | उर्दु साहित्य से लेकर हिंदी साहित्य तक गजल का दौर इसी राह से गुजरा है | डा ॅ.एन सिंह के मंन्तव्यानुसार " उर्दु काव्य पर यह आरोप थोपा जाता है कि उर्दु काव्य आशिक और माशुक तथा शराब और शाकी काव्य है | उसी प्रकार हिंदी गजल पर भी विद्वानों का यह विश्वास रहा है कि गजल में मात्र प्रणयानुभूति ही अभिव्यक्ति पा सकती है |" 7

सांसरिक प्रेम के अलावा गजल में तसव्वुफ़ और भक्तिरस का वर्णन होता है |सूफी कवियों ने गजल को भक्तिरस और तसव्वुफ़ से जोड़ा। आधुनिक काल में गजल सिर्फ प्रेम तक सीमित न रहकर सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर भी गजलें लिखी जाने लगी है |

-मीर को गजलों का सम्राट माना जाता है। गालिब ने भी उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया | इनकी रचना के संबंध में गालिब ने कहा है ,

" रेखते के तुम्ही उस्ताद नहीं हो गालिब
कहते है अगले जमाने में कोई मीर भी था |"9

हिंदी गजल और दुष्यंतकुमार का महत्व :

हिंदी गजल का मूल स्रोत उर्दू साहित्य रहा है। दुष्यंतकुमार ने हिंदी गजल को नई दिशा दी। 70 के दशक के दुष्यंतकुमार एक प्रमुख गजलकार रहे है | उनका जन्म 27 सिंतबर 1933 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के राजपूर के नवादा गाँव में हुआ | उनका मूल नाम दुष्यंतकुमार त्यागी है |उन्होंने हिंदी गजल को नई दिशा प्रदान की | दुष्यंतकुमार ने गजलों को आशिक-माशूक और विरह तक सीमित न रखकर आम आदमी की पीड़ा, राष्ट्रचिंतन और लोकतांत्रिक विडंबनाओं को केंद्र बनाया । उनका प्रमुख गजल संग्रह ' साए में धूप ' हिंदी साहित्य में मील का पत्थर माना जाता है। इसमें 52 गजलें संकलित हैं। उनकी गजलों की भाषा आम आदमी की भाषा है, जो सीधे पाठकों के हृदय को स्पर्श करती है।

दुष्यंतकुमार की गजलों में सामाजिक चेतना. :

उनकी गजलों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना प्रमुख है। वो समाज में क्रांति और परिवर्तन चाहते है |```

"मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए। "11

दुष्यंत कुमार को आम आदमी के प्रति गहरी संवेदना है | वह किसी पर हो रहे अन्याय को बर्दाश नहीं कर सकते इसलिए वे कहते है....

"यह जुबाँ हमसे सी नहीं जाती ,
जिंदगी है कि जी नहीं जाती |" 12

इस देश में गरीब मजदूर लोग दिनभर काम कर के अपना खून पसीना एक कर देते है ,लेकिन उन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती ,उनकी इस दुर्दशा पर दुष्यंतकुमार कहते है ,

"भूख है तो सब्र कर ,रोटी नहीं तो क्या हुआ ,
आजकल दिल्ली में हैं जोर से बहस ये मुद्दा " 13

गरीब ,लाचार इन्सान सिर्फ सहना जानता है,क्योंकि उसे पता है उसकी आवाज सुननेवाला यहाॅ कोई भी मौजूद नहीं है |वो हमेशा डर-डरके जाता है | और हमारे राजनेता सिर्फ बहस करने में अपनी धन्यता मानते है | दुष्यंतकुमार अपनी गजल की माध्यम से आम आदमी की आवाज बनना चाहते है ,व्योंकि उन्हें पता है आम ईन्सान अपनी हक की लडाई नहीं लढ सकता |

"वो आदमी मिला था मुझे उसकी बात से ,
ऐसा लगा कि वो भी बहुत बेजुबान है | "14

दुष्यंतकुमार की गजलों में आस्था का स्वर रहा है | उन्होंने धैर्य से काम लेकर परिवर्तन का इंतजार किया | दुष्यंतकुमार की गजलों ने हिंदी गजल को मंचीय लोकप्रियता दिलाई। आज भी उनकी गजलों का पठन और गायन जनसभाओं में होता रहता है , जिससे गजल साहित्यिक दायरे से निकलकर जनसंस्कृति का हिस्सा बनी।

निष्कर्ष :

गजल उर्दू-फारसी साहित्य की देन होते हुए भी हिंदी साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बना चुकी है। हिंदी गजल ने प्रेम और विरह के अतिरिक्त सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय विषयों को भी अभिव्यक्ति दी है। दुष्यंतकुमार ने हिंदी गजल को आम आदमी की आवाज़ बनाया और उसे साहित्यिक ही नहीं, सामाजिक चेतना का भी माध्यम बनाया। उनकी गजलों ने हिंदी साहित्य में गजल को एक नई ऊँचाई प्रदान की। वर्तमान समय में गजल केवल भारतीय साहित्य तक सीमित नहीं है,बल्कि आज

यह विश्व साहित्य में भी एक जनमान्य विधा बन गयी है | अंग्रेज़ी, फ्रेंच और अन्य भाषाओं में हिंदी गजल के अनुवाद लोकप्रिय हो रहे है |

संदर्भ :

1. हिंदी गजल उद्भव और विकास , डॉ. रोहिताश्व अस्थाना , प्रकाशक-जगदीश भारद्वाज सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली ,1987 ,पृष्ठ-3
2. हिंदी गजल- दशा और दिशा, डॉ.नरेश,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ,पृष्ठ-13
3. वहीं, पृष्ठ-13
4. वहीं ,पृष्ठ -18
5. वहीं,पृष्ठ-17
6. दुष्यंतकुमार व्यक्तित्व एवं कृतित्व , डॉ.गिरीश त्रिवेदी ,शांति प्रकाशन, दिल्ली, ,2003, पृष्ठ-114
7. गजल के तत्व ,शम्सुर्हमान फारुकी ,शमा बुक डेपो ,दिल्ली ,पृष्ठ -18
8. दुष्यंतकुमार व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. गिरीश त्रिवेदी, शांति प्रकाशन, 2003 ,पृष्ठ-118
9. वहीं, पृष्ठ-15
10. वहीं, पृष्ठ-126
11. वहीं , पृष्ठ-128
12. वहीं ,पृष्ठ-129
13. वहीं ,पृष्ठ-137

*****

बैकुंठपुर में बचपन संस्मरण में गीत

प्रदीप निवृत्ति बेनके
शोध छात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
मो. – 9921982153
pradeepbenake19@gmail.com

शोध सार :

साहित्य मे अनेक विधा है। गद्य साहित्य के अंतर्गत कथा और कथेतर विधा होती है। कथेतर विधा में संस्करण विधा एक लोकप्रिय विधा मानी जाती है, जिसमें लेखक अपने देखे, सुने और अनुभव किए हुए क्षणों को आत्मीयता के साथ अभिव्यक्त करता है। संस्मरण केवल व्यक्तिगत यादों का संकलन नही है। संस्मरण एक विशेष समय, समाज, संस्कृती, राजनीतिक परिस्थितीयों का सजीव चित्रण भी प्रस्तुत करता हैं। इस विधा मे लेखक की आत्मकथा के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी व्यक्त होती हैं। संस्मरण का मूल अर्थ है 'सम्यक स्मृति' एक ऐसी स्मृति जो अधिक संवेदनशील बनाती है। संस्मरण मे देखा जाए तो कहानी, निबंध, जीवनी, आत्मकथा इन सब विधा के साथ उसमें गीत की भी अनेक विशेषताएँ मिलती है। संस्मरण का उद्भव और विकास द्विवेदी युग से मिलता है। हिंदी साहित्य मे अनेक प्रतिष्ठित लेखक हे, जिन्होंने संस्मरण लिखे हैं। लेखन क्षेत्र में सतत सक्रिय राहने वाले कांति कुमार जैन ने अपनी अलग पहचान बनाई है और संस्मरण लिखते समय अलग-अलग गीत भी लिखे है। जिसमें यह विधा गीत अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण बन जाती है।

बीज शब्द : संस्मरण गीत, समाज, समय।

उद्देश :

1) संस्मरण के गीतों को वास्तविकता के साथ प्रस्तुत करना?
2) संस्मरण गीतों की सामाजिक परिस्थिति को जानना?
3) हिंदी संस्मरण विधा में गीत के माध्यम से साहित्य के विशेषताओं को विश्लेषित करना?
4) संस्मरण गीत के माध्यम से समय कितना कीमती होता है यह जानना?
5) संस्मरण गीत के विकास की प्रवृत्तियों को समझना?

प्रस्तावना:

संस्मरण साहित्य हिंदी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा हैं, जिसमें लेखक अपने देखे, सुने और अनुभव किए हुए क्षणों को आत्मीयता के साथ लिखता है। "जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाएं, चरित्र या संदर्भ जब स्मृति पटल पर अंकित हो जाते हैं तब शब्द चित्रों के द्वारा उनका अंकन करना ही संस्मरण कहलाता है।"[1] संस्मरण केवल व्यक्तिगत यादों का संकलन नही है, बल्कि वे एक विशेष समय, समाज, संस्कृती और राजनीतिक परिस्थितीयों का सजीव चित्रण भी प्रस्तुत करते है। इस विधा मे लेखक की आत्मकथा के साथ-साथ समाज के साथ जो भी चेतना है व व्यक्त होती है। जिसमें यह विधा ऐतिहासिक और सांस्कृतीक अध्याय के लिए महत्त्वपूर्ण बन जाती है। हिंदी विधा के संस्मरणों मे सिर्फ व्यक्तिगत अनुभव का चित्रण न मिलकर साथ ही वे समकालीन सामाजिक, राजनीति, संस्कृती, स्त्री विमर्श, दलित चेतना और गीत से भी जुड़े है। संस्मरण साहित्य ने जहा एक ओर साहित्यिक अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनाने की प्रक्रिया जारी रखी, वहीं दूसरी तरफ यह विदा आत्मकथात्मकता से आगे बढ़कर गीत और सामाजिक चेतना का वाहक बन गई। हिंदी साहित्य के विविध विधाओं में अनेक साहित्यकारों ने अपनी एक अलग पहचान बनाई हैं। समकालीन संस्मरणकारों में कांतीकुमार जैन का अपनी एक महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। कांतीकुमार जैन के संस्मरण विधा मे अपने समय,स्थिती एवं बदलाव का प्रामाणिक चिंतन किया है और पाठक वर्ग इसे पढ़कर संदर्भ का अनुमान लगा सकता है। प्रस्तुत शोध के द्वारा संस्मरण को समस्त पहलुओं के साथ समझने मे सहयोग मिलेगा। उनके संस्मरण केवल व्यक्तिगत जीवन के

अनुभव को आश्रय देने का कार्य करते है बल्कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप मे भी महत्त्वपूर्ण है। इस रूप मे हम कहा सकते है की कांतीकुमार जैन के संस्मरण मे भी द्विवेदी युग मे लिखे हुए संस्मरण गीतों का प्रतिबिंब दिखाई देता है। संस्मरण व्यक्ति के जीवन, संघर्ष और सांस्कृतिक परिवर्तन को उजागर करते है। कांती कुमार जैन की हिंदी संस्कृत साहित्य का अनुशीलन केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नही बल्कि समाजशास्त्रीय और सांस्कृतीक दृष्टीगोचर से भी महत्वपूर्ण है। कांतीकुमार जी ने अनेक संस्मरण लिखे उसमें से हम देखेंगे बैकुंठपुर मे बचपन संस्मरण मे गीत।

संस्मरण की व्याख्या, अर्थ और विकास :

संस्मरण एक सास लेती हुई जीवंत विधा है। इसका मूल अर्थ है 'सम्यक स्मृति' एक ऐसी स्मृति जो अधिक संवेदनशील बनाते है। संस्मरण मे देखा जाये तो कहानी, निबंध,जीवनी,आत्मकथा आधी की अनेक विशेषताएँ मिलती है। संस्मरण का उद्भव और विकास द्विवेदी युग से मिलता है। द्विवेदी युग मे बहुत सारी संस्मरण लिखे लेकिन सही सफलता 'पदमसिंह' शर्मा द्वारा रचित पद्म पराग से हुई और इसे हिंदी का पहला संस्मरण भी माना जाता है। हिंदी साहित्य मे हिंदी साहित्य मे अनेक प्रतिष्ठित लेखक है, जिन्होंने संस्मरण लिखे है। लेकिन हिंदी साहित्य के संस्मरण लेखन मे कांतीकुमार जैन ने अपनी अलग पहचान बनाई है। लेखन क्षेत्र में सतत सक्रिय रहने वाले कांतीकुमार जैन ने संस्मरण लिखते समय अपनी मित्रता, पशु प्रेम, लेखक का बचपन, बसंत की बात ऐसे अनेक घटना पर उन्होंने लेखन किया है। इसी वजह से मैंने कांती कुमार जैन के बैकुंठपुर मे बचपन इस संस्मरण पर उसमें जो गीत है उस पर रिसर्च पेपर तैयार कर रहा हु। संस्मरण लेखक संस्मरणीय के साथ बिताए विशेष कालखंड का गीतों के माध्यम से वर्णन करता है। उक्त कालखंड का देश-काल, परिवेश संस्मरण को सजीव बनाता है। संस्मरण की घटनाएँ कालखंड प्रामाणिक होते हैं, जिसका साक्षी स्वयं संस्मरणकार होता हैं। संस्मरण मे काल्पनिक एवं अधूरा सच बयां करने की आजादी नही होती है। संस्मरण मे किसी अधूरी घटना को पूर्ण रूप देना संस्मरण तत्व के विरुद्ध है। स्मृत विषयक तर संस्मरण लेखन मे मुख्य भूमिका अदा करते हैं और संस्मरणकार की भूमिका गौण बन जाती है। संस्मरण के शुरुवाती दौर मे 'संस्मरण' स्वतंत्र विधा के रूप मे विकसित नही हुई थी। संस्मरणों का शुरुवाती दौर 'संस्मरणात्मक लेख' के रूप मे पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुआ है। स्वतंत्र विधा के रूप मे संस्मरण का विकास सन 1907 मे बालमुकुंद गुप्त द्वारा प्रताप नारायण मिश्रा पर लिखे गये संस्मरण से होता है। आरंभिक संस्मरण अधिक तर साहित्यकारों पर लिखे गये है। हिंदी के साहित्यकारों ने संस्मरण विधा मे लेखन करते समय का गुरु,भाई, क्षेत्र,मित्र आदी स्मृति विषयों का चयन किया हैं। संस्मरणों मे स्मृति विषय के अतीत के रहस्यों को उद्घाटित किया जाता है। जिसमें पाठकों की उत्सुकता और रुची होती है।

जंगल के राजा का शिकार:

कांतीकुमार जी का बचपन बैकुंठपुर में गुजरा। बैकुंठपुर एक ऐसा गाव जिस गाव मे जो भी बड़ा अधिकारी हो उसके घर के अंदर बारहसिंघे सिंग दीवार पर अवश्य लगा दिखाई देता हैं। उसका उपयोग वह लोग टोपी, छाता, कपड़े लगाने के लिए खूंटी की करते थे। लोगों को शिकार करने की बहुत आदत थी। लड़कों का दल एक साथ मिलकर ब्राह्मण परिवार मे जाता है।

"चल के करा रोको पोंको बंभनाने अंगणा
उठा हो बंभनाइन भौजी, झिम्मा दिया बारा ना
कैसे के उंचौं दाऊद, कोरे एक लरिकाना
एक तो हवै रोवन धोवन,बाकी ले गये बघवाना"[2]

सब मित्र ब्राह्मण देवता के आँगन पे जाकर मस्ती करते है और कहते है, की ये कैसा अंधकार छाया है उठो और दिया जलाओ। तब वह कहती है मैं कैसे उठूँ मेरी गोद मे तो एक शिशु है। बस यही सुरक्षित है बाकी तो सब बाघ पकड़ के चला गया। अगर दिया जलाया तो उस बाघ को पता चलेगा की यहाँ कोई तो है तो बाघ उसे भी लेकर चला जायेगा। यह एक कोरिया की घटना बताई है जिसमें बाघ का अर्थ होता है अप्रत्याशित मृत्यु। बाघ कोरिया का राजकीय पशु ही नही था वह मृत्यु दल का नेता भी था।

जित देखो तीत बांस ही बांस:

पहले बांस की लकड़ी मिलती थी बांस से हम सब कुछ सामान बनाते थे। देखा जाए तो पिचकारी बनाने के लिए उसकी जो मुठिया होती है वो बास की होती है। बैकुंठपुर गाव के लोगों का सारा घर बांस मैं था, सब जगह पर बांस ही बांस था। बास आदिवासी सभ्यता का फौलाद है।

"अडगड ऊपर बडगड
बडगड ऊपर डोर
गाय भइंस ला छांडिके
कोठा ला लेगे चोर"[3]

बचपन मे कांती कुमार जी को उनके मित्र जितू ने एक पहेली सिखाई थी। उस पहेली मे बांस भी था, मधुमक्खी भी थी और शहद भी था। उसी का अनुकरण ऊन पंक्तियों में किया है। जो बांस की लकड़ी है उसके ऊपरी सिरे पर मशाल का कपड़ा बांधा है, मशाल के कपडों से लपट उठ रही है ये उसमें बताया है। उसमें जो कोटा बताया है उसका अर्थ हे मधुमक्खी के छते मे रहने वाली 'मधुमक्खियों' जो छता जलाता है उसकी कोई रुची नही है।

भिखारी:

बैकुंठपुर में एक बी भिखारी नही था। किसी को भी भीख मांगने की आवश्यकता नही थी। प्राकृतिक के पास जो कुछ भी है सब उन लोगों का ही है। थोड़े से हात पैर हिलाओ जो चाहो पालो। उन लोगों का श्रम ही सब कुछ था, वहाँ के लोग बहुत श्रम करते थे। इसीलिए वहाँ रोजगार की कमी नही थी और लोग भूखे नही मरते थे। कोई कोडिहा भी नही कहलाना चाहता। कोडिया यांनी आलसी। आलसी प्रवृत्ति का एक भी आदमी वहाँ पर नही था। कांती कुमार जी ने चौथी कक्षा मे 'बाल भारती' मे एक कविता थी भिक्षुक उनकी पंक्तियां भी बताई हैं-

"भस्म रमाये सुंदर तन पर
झोली टांगे है कांधे पर
चिमटा कर में लिये बड़ा
दरवाजे पर कौन खडा?"[4]

मुक्त पंक्तियाँ भिक्षुक यानी भिखारी पर लिखी हुई है। भिखारी लोग सवेरे मांगने आते थे। घर मे जो भी महिलाएँ है उन भिक्षुक को कनक, आलू या एका दमडी दिया करते थे। पर बैकुंठपुर में किसी को आटा, आलू या दमडी की जरूरत नही थी क्योंकि वहाँ के लोग आलसी नही थे। सब लोग काम करते थे और खुद की रोजी रोटी खुद कमाल लेते थे।

निष्कर्ष:

इस शोध कार्य से निष्कर्षत: यह साबित होता है की संस्मरण की शुरुवात भले ही द्विवेदी युग से हुई होगी, लेकिन सही सफलता उनको कांती कुमार जी ने ही दि है। पद्म पराग से लेकर आज तक के संस्मरण मे गीतों का जो बोलबाला है वह अविस्मरणीय है। संस्मरण मे गीत है वह गीत पाठक वर्ग के लिए बहुत ही प्रेरणादायी और लोकप्रिय है। पाठक वर्ग इसे बहुत आत्मविश्वास से पढ़ रहा है। इसीलिए संस्मरण यह जो विधा है वह दिन ब दिन बहुत ही बढती जा रही है।

संदर्भ:

1. डॉ. शर्मा मनोरमा, संस्मरण और संस्मरणकार, आराधना ब्रदर्स कानपुर, प्रथम संस्करण 1988 पृ. क्र.12
2.जैन कान्तिकुमार, बैकुंठपुर में बचपन, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2018, पृ. क्र. 59
3. वही पृ. क्र. 72
4. वही पृ. क्र. 149

*****

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी गजल की दिशा

डॉ. हाशमबेग मिर्झा
प्रोफेसर हिंदी विभाग,
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
नलदुर्ग 9421951786

गजल का आरंभ अरब की गर्म हवाओं में हुआ। जहां जिंदगी खुशियों के लिए तरस जाती थी। दिन भर उपजीवी का हेतु रेगिस्तान की खाक छाननेवाले अरब और दुनिया की सबसे प्राचीन सभ्यता वाले फारस के लोग दिन की गर्मी से बचने के लिए रात में विविध उत्सव के द्वारा मनोरंजन किया करते थे। यह तब की बात है जब अरब में इस्लाम का उदय नहीं हुआ था। छोटी-छोटी खुशियों को लोगों के साथ बांटना फारस के लोगों की विशेषता थी। उनके लिए मनोरंजन का साधन गाना, बजाना, नृत्य करना, खाना, शराब पीना और नारी सौंदर्य में लिप्त हो जाना था। यहीं से गजलों का आरंभ हुआ वैसे 'गजल' शब्द का शब्दशः अर्थ है 'हिरण की आंख' या 'सुंदर आंखों वाली स्त्री' आगे जाकर इसका अर्थ बना 'सुंदर स्त्री से बातचीत करना' 'सुंदर स्त्री के सौंदर्य का बखान करना'। यही आरंभिक गजल थी, जो अब छंद के रूप में प्रयुक्त की जाती है।

गजल की संरचना में कम से कम पांच से और ज्यादा से ज्यादा 15 शेर होते हैं। दो पंक्तियों के एक दोहे को शेर कहा जाता है। गजल या शेर लिखनेवाले को 'शायर' कहा जाता है। 'मिसरा ए उला' और 'मिसरा ए सानी' से शेर बनता है। किसी भी गजल की पहली दो पंक्तियां शेर कहलाती है। शेर की पहली पंक्ति को 'रदीफ' और दूसरी पंक्ति को 'काफिया' कहते हैं। जो एक विशिष्ट छंद में बंधा होता है जिसे 'बहर' कहते हैं। गजल के अंतिम शेर को 'मक्ता' कहते हैं। जिसमें शायर अपना 'उपनाम' या 'तखल्लुस' का प्रयोग करता है। पर यह जरूरी नहीं कि वह उपनाम का प्रयोग करें ही। वैसे तो गजल दो प्रकार की होती है, पहले प्रकार की गजल को 'मुसल्सल गजल' कहते हैं। जिसमें हर शेर एक दूसरे से जुड़ा हुआ होता है और दूसरे प्रकार की गजल को 'गैर मुसल्सल गजल' कहा जाता है। जिसका प्रत्येक शेर स्वतंत्र होता है, और उसका अर्थ भी भिन्न होता है। इसमें काफिया एक दूसरे शेर को जोड़े रखता है। गजल का प्रत्येक शेर एक घटना या कथ्य को बयान करता है। जैसे, हिंदी साहित्य में कबीर, बिहारी या रहीम के दोहे।

यही गजल जो नारी सौंदर्य की बात करती है, भारत में पहुंची तो आरंभ में इसने वही कार्य किया जो पारस में होता था। अपने दरबारी सामंत या राजा को खुश करने के लिए नारी सौंदर्य का बखान करना या सामंत की स्तुति करना। किंतु आजादी के बाद इसका रुख बदल गया 1960 के बाद लोगों की मनोवृत्ति में बदलाव आया देश की सामाजिक, आर्थिक, राजकीय, धार्मिक, संस्कृतिक, शैक्षिक परिवेश में परिवर्तन हुआ। परिणाम स्वरूप साहित्य भी अपने प्रवृत्तियों को बदलने लगा। हिंदी काव्य जगत में दिनकर, नविन, धूमिल, नागार्जून जैसे कवियों ने शासन और प्रशासन के विरोध में न केवल विरोध जताया बल्कि विद्रोहात्मक कविताएं भी लिखी। जिसका प्रभाव पूरे हिंदी साहित्य जगत पर पड़ा। इसी परिणाम स्वरूप दुष्यंत कुमार जैसे गजलकारों ने अपने मन में उत्पन्न आक्रोश को व्यक्त किया। उन्होंने अपनी बात को सहज सरल कविता में कहने के बजाय गजल को माध्यम बनाया। भारतीय साहित्य में गजल के माध्यम से सामाजिक समस्याओं व्यक्त करना एक नया प्रयोग था।

भारतीय संस्कृति किसी एक धर्म, जाति या संप्रदाय से नहीं बनी। इसका उद्भव हजारों साल पहले हुआ और इसने इन हजारों वर्षों में कई उतार-चढ़ाव देखे। कई धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैसर्गिक प्रभाव को झेलते हुए एक नई परंपरा का निर्वाह किया। इसे विभिन्न नाम दिए गये इनमें से गंगा-जमुना तहजीब या भारतीय संस्कृति यह सर्व विदित है। इसमें साहित्य लिखने वाले रचनाकार विभिन्न जाति, धर्म, समुदाय, परंपरा, रीति-रिवाज को मानने वाले है। परंतु कई परंपराए या रीति रिपाज ऐसे भी है जिसे पुरा भारत देश मानता है। आजादी के पहले देश का तराना लिखने वाले कवि इकबाल इसीलिए कहते हैं,

''सारे जहां से अच्छा, हिंदुस्तान हमारा।
हम बुलबुले हैं इसकी, ये गुलसिता हमारा।''

भारतीय संस्कृति ने कई वर्षों के संघर्षों से अपने मूल्यों का निर्माण किया। इसकी अपनी रूढ़ि, परंपरा, रीति-रिवाज रहे हैं। विभिन्न युध्द, विपिŸायो, परिवर्तनों और संघर्षों के कारण इसकी अपनी धारणाएं बनी हैं। जिसमें अपनापन और सुख-दुख दिखाई देता है। यही कारण है कि हम भारत में कई प्रकार के सन-उत्सव और त्यौहार मनाते हैं। हमारे पास किसी बच्चे के जन्म

के पूर्व से लेकर मरने तक कई परंपराओं का निर्वाह होता है। यह निर्वाह हिंदू, मुस्लिम, सिख, इसाई, बौध्द या जैन आदि धर्म के न होकर एक परंपरा के रूप में पूरे देश में मनाए जाते हैं।

आजादी के बाद हिंदी साहित्यकारों ने अपनी कविताओं में विद्रोह और विरोध का स्वर अपनाया बालकृष्ण भट्ट शर्मा नवीन कहते हैं, 'कवि कई कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।' तो राष्ट्रकवि दिनकर तत्कालीन समय की राजनीति पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, 'सिंहासन खाली करो की जनता जागती है।' इसी स्वर को सर्वप्रथम दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में व्यक्त किया। चीन का युद्ध, पाकिस्तान से दो बार युद्ध, देश की महामारी, विभाजन की त्रासदी इन सब घटनाओं से देश जर्जर हो चुका था। जिसे देख दुष्यंत की वाणी रहती हैं,

''कल नुमाइश में मिला मुझे वो चीथड़े पहने हुए।
मैंने पूछा नाम तो कहने लगा हिंदुस्तान हूं मैं।।''

भारतीय संस्कृति भारत में रहनेवाले सभी को साथ लेकर चलती है। हमारे यहां कोई व्यक्ति भूखा रहता है तो हमें भी खाने का कोई अधिकार नहीं यह हमारी संस्कृति की मान्यता है। हमारे मूल्य हमें सिखाते है, अगर हमारी थाली में एक रोटी है, तो आधी स्वंय खाओ और आधी रोटी भूखे को दे। कवि गोपालदास नीरज अपनी बादलों से सलाम लेता हूँ संग्रह की गजल में यही कहते हैं,

''मेरे दुख दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा
मैं रहूं भूख तो तुझ से भी खाया ना जाए।''

हिंदू धर्म में औरत को देवी का स्थान दिया जाता है, यही कुछ स्थिति इस्लाम धर्म की हैं। जहां पर मां के कदमों के नीचे जन्नत और चार बेटियों के पिता जन्नत का हकदार माना जाता है। फिर भी देश में नारी को वो स्थान नहीं मिल रहा जिसकी वो हकदार है। 21 वी सदी में खुद को आधुनिक कहने वाला समाज आज भी नारी को पांव की जुती कहता है। भारतीय नारी की इस विवंचना को उसकी त्रासदी को देखते हुए प्रसिद्ध गजलकर अदम गोंडवी अपने गजल संग्रह समय से मुठभेड़ में कहते हैं,

''औरत तुम्हारी पांव की जूती की तरह है
जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।''

पिछले कुछ वर्षो से देश में महिलाओं की स्थिति इतनी बुरी हो गई है कि 6 साल की बच्ची से लेकर 60 साल की वृद्धा तक कोई सुरक्षित नहीं है। आए दिन हम महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, अधिकारों का हनन या बलात्कार जैसी घटनाएं देखने को मिल रही है। वह एक नारी के साथ-साथ मां, बेटी, बहन, पत्नी के रूप में भी है किंतु यह समाज उसे केवल उपभोग की वस्तु ही मानता है। अभी भी हम उसे मनुष्य की नजर से नहीं देखते। साहित्यकार की नजर बड़ी पैनी होती है, वह नारी तन के साथ मन की बात भी करता है। प्रसिध्द गजलकार कुंवर नारायण कहते हैं,

''ये बीबी ही नहीं मां है, बहन और बेटी है।
ये किसने कह दिया, औरत तो बिस्तर का खिलौना है।''

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक रिश्तों के साथ ही दोस्ती का रिश्ता भी बेहद महत्वपूर्ण माना गया है। बहुत बार कहा गया है कि खून के रिश्ते से दोस्ती का रिश्ता बड़ा होता है हिंदी गजलों में भी इस पावन रिश्ते को खूब सजाया संवारा गया है। किंतु वर्तमान परिवेश में दोस्ती दुश्मनी में बदल गई। कोई भरोसे लायक या ईमानदार नहीं रहा। हर व्यक्ति इस दौर में स्वार्थी हो गया है, प्रसिद्ध गजलकार जहीर कुरैशी कहते हैं,

''अब किसे अपना कहे किस द्वार पर आवाज दे
दोस्त रिश्ते फुल सब कांटों के बिस्तर हो गए।''

भारतीय संस्कृति में गुरु का महत्व माता-पिता से बड़ा और ईश्वर के समान होता है। गुरु के लिए शिष्य भी अपने पुत्र से बड़ा होता है। जिसे भारतीय साहित्य के सभी संतो ने स्वीकार किया है। आज भी भारतीय धार्मिक परिवेश में गुरु शिष्य परंपरा दिखाई देती है किंतु वर्तमान समय में यह रिश्ता या परंपरा भी खत्म होती नजर आ रही है। शिक्षा नीति बाजारवाद पर निर्भर होने के कारण शिक्षा का बाजारीकरण हो गया है। फिर भी एक शिक्षक की आत्मा उसे पुकार कर कहती है

''आज न पूछा तो कल पूछेगा, वक्त इसका हमसे हिसाब पूछेगा।
नवनिहालों को दिया क्या हमने, जमाना इसका हमसे जवाब पूछेगा।''

'संस्कृत' शब्द 'संस्कार' से बना है, यह संस्कार हमें सबसे पहले हमारे परिवार में और परिवार से पहले मां की कोख से मिलते हैं। माता-पिता और परिवार के बुजुर्गजन हमें अच्छाइयां और बुराइयों का फर्क बताते हैं। हम आजीवन इन संस्कारों को संजोय हुए रखते हैं। इसे ही संस्कार कहा जाता है किंतु परिवार विघटन के कारण यह संस्कार खत्म होते नजर आ रहे हैं। यही कारण है कि देश के हर छोटे बड़े शहरों में पालनाघर, अनाथालय, वृद्धाश्रम की संख्या दिन ब दिन बढ़ती नजर आ रही है। उर्दू-हिंदी के प्रसिद्ध शायर मुनव्वर राणा कहते हैं,

''किसी को घर मिला हिस्से में या दुकान आयी।
मैं घर में छोटा था मेरे हिस्से में मां आयी।''

जब हमारे संयुक्त परिवार होते थे तब बुजुर्गों के लिए घर में विशेष स्थान था। छोटे बच्चों पर यही लोग संस्कार करते थे। छोटे बच्चे इन्हीं की उंगली पड़कर चलते किंतु आज एकल परिवार में वृद्धो को घर में कहीं जगह नहीं है। इसलिए घर के वृद्धो को वृद्धाश्रम में और छोटे बच्चों को पालनाघर में छोड़कर माता-पिता दोनों नौकरी या पैसा कमाने घर से बाहर चले जाते हैं। यह पूरे देश की समस्या बनी हुई है। इन सबको देखते हुए कवि नीरज कहते हैं,

''अब मजहब कोई ऐसा चलाया जाए,
जिसमें इंसानों को इंसान बनाया जाए।
जिसकी खुशबू से महक जाए पड़ोसी का भी घर,
फूल इस किस्म का हर सिम्त खिलाया जाए।।''

21 वी सदी के इन पच्चिस वर्षों में आए दिन धर्म के नाम पर होने वाले साम्प्रदायिक दंगों तथा मॉब लीचिंग की घटनाओं में जान व माल का बहुत नुकसान हा रहा है। 1992 में बाबरी मस्जीद का विवादित ढांचा तोड़ा गया परिणाम स्वरूप पूरे देश में दंगें हुए जिससे सामाजिक सौहार्द बिगड़ गया। इस आग में धार्मिक गुरूओं और स्वार्थी नेताओ के विवादित बयानबाजी ने तेल का काम किया। हिंदी ग़ज़लकारों ने इस बढ़ती सांप्रदायिकता को अपनी गजलों में व्यक्त किया। रामकुमार कृषक अपनी गजल में कहते है,

"वहाँ अल्लाह-हो-अकबर, यहाँ श्रीराम की जय-जय।
इधर गुरुओं की पौबारह, उधर रहबर बहुत खुश है।।"

आज देश के हालात कैसे भी हो किंतु हमारे संस्कार हजारों वर्ष पुराने है। देश भले ही जर्जर हालात में हो पर यह हालात भी बदल जाएंगे। हमारी सांस्कृतिक धरोहर, हमारी परंपराएं, रीति-रिवाज हमारे रक्त के हर बुंद में समाहित है। जो समय के साथ फिर से हमें एक सूत्र में बांध कर रखेंगे और हम तरक्की के उरूज पर पहुंचेगे।

*****

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में चेतना के विविध आयाम

डॉ. एन. बी. एकिले
सहयोगी प्राध्यापक एवं प्रमुख, हिंदी विभाग
शिवराज महाविद्यालय साहित्य, वाणिज्य एवं डी. एस.
कदम विज्ञान महाविद्यालय, गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर
ईमेल : narsingekile85@gmail.com

शोध सारांश :

समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने वर्तमान समय की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और पर्यावरणीय समस्याओं, विसंगतियों और संघर्षों को अपनी ग़ज़लों में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। जिसमें आम आदमी के सुख, दुःख-दर्द, भ्रष्टाचार, स्वार्थ से भरी राजनीति, पर्यावरण प्रदूषण, नारी उत्पीड़न और बदलते जीवन मूल्यों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से केवल समस्याओं की ओर ही इशारा नहीं किया है बल्कि वे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज में सकारात्मक बदलाव की प्रेरणा देते हैं। प्रस्तुत ग़ज़लकारों ने समाज में मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का सशक्त एवं सार्थक प्रयास करते हुए संवेदनशील और आशावादी दृष्टिकोण को जगाया है तथा समतावादी समाज के निर्माण की दिशा में प्रेरित किया है।

बीज शब्द : समकालीन, ग़ज़ल, चेतना, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, पर्यावरणीय आदि।

प्रस्तावना :

साहित्य का मानव से घनिष्ठ संबंध है। साहित्य में मानवीय जीवन और उसके परिवेश को अनेक संवेदनात्मक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। ग़ज़ल इन्हीं संवेदनात्मक विधाओं में से एक है, जिसमें समयानुरूप कई परिवर्तन हुए और इन परिवर्तनों को इस विधा ने समय-समय पर साहित्य में चित्रित किया है। वास्तव में समकालीन हिंदी ग़ज़ल किसी परिचय की मोहताज नहीं है। वह युगीन चेतना को प्रकट करने में सर्वाधिक सफल एवं प्रभावशाली विधा है। समकालीन ग़ज़ल अपने युगीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए मानवीय जीवन से संबंधित सभी पहलुओं को ईमानदारी से अभिव्यक्त करती है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों में दुष्यंत कुमार, जहीर कुरेशी, राजेश रेड्डी, कुंअर बैचेन एवं बृजेश सिंह जैसे ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय चेतना की जड़ें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। जिसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध-आलेख में चित्रित करने का सफलतम् प्रयास किया है, जो निम्नवत है-

ग़ज़ल केवल काव्य की एक विधा मात्र नहीं है, बल्कि वह भारतीय समाज की धड़कन है। हिंदी के प्रसिद्ध ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें सामाजिक चेतना का प्रतीक है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज की संवेदनाओं, राजनीतिक परिस्थितियों, सांस्कृतिक ह्रास और आम जनता की पीड़ा को वाणी प्रदान की है। उनकी ग़ज़लें मात्र काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वे सामाजिक चेतना का यथार्थ दर्पण है। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, शोषण और मानव मन की सूक्ष्म विवशताओं का यथार्थ एवं प्रामाणिक विवेचन अपनी ग़ज़लों में प्रस्तुत किया है। दुष्यंत कुमार ने समाजी और सियासी विसंगतियों, विद्रूपताएं और विड़म्बनाओं को अत्यंत करीब से महसूस करते हुए उन्हें बड़े सलिके से ग़ज़लों में प्रस्तुत किया है। उनकी ग़ज़लें संवेदनशील पाठक को अत्यधिक प्रभावित एवं विचलित करती है। दुष्यंत कुमार अपने 'साये में धूप' नामक ग़ज़ल संग्रह में लिखते हैं -

"भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में जेरे बहस में मुद्दआ
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"[1]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से दुष्यंत कुमार समाजी और सियासी स्थिति पर गहरा व्यंग्य कसते हैं। उनकी ग़ज़लों में व्यक्त सामाजिक चेतना को महसूस करते हुए डॉ. रणजीत लिखते हैं- "प्रगतिशील जनवादी भाव और विचार सूत्रों से संग्रहित इन ग़ज़लों के अनेक शेर सूक्तियों और मुहावरों की तरह प्रबुद्ध लोगों की जुबान पर चढ़ गए हैं।"[2] दुष्यंत कुमार एक प्रगतिशील, प्रयोगशील और रूझानशील ग़ज़लकार है। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना का स्वर प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है। साथ ही उनकी ग़ज़लों में सामाजिक जीवन की समग्रता और जटिलता का सूक्ष्म विवेचन विस्तृत रूप में प्रस्तुत हुआ है।

आजादी के बाद भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली का स्वीकार किया है। राजनीतिक दल लोकतांत्रिक प्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। लोकतंत्र के माध्यम से जनता की चुनी हुई सरकारें ही हमारे देश का शासन, प्रशासन और नीति, निर्माण विकास की योजनाएं बनाती है तथा उन्हें क्रियान्वित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जनता का सीधा जुड़ाव व्यवस्था से होता है लेकिन कालांतर में इस व्यवस्था में कई प्रकार की विसंगतियां आने से कई सारे गंभीर प्रश्न उपस्थित होते हैं। आज चुनावी प्रणाली में आयी विसंगतियां, वैचारिक अस्थिर, चुनावी धांधली, दिशाहीन राजनीति, परिवारवाद, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और स्वार्थी राजनीतिज्ञों के कारण हमारे लोकतंत्र को बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हो रहा है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने राजनीतिक व्यवस्था में आयी इन विसंगतियों पर कठोर प्रहार किया है। समकालीन प्रसिद्ध हिंदी ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में युगीन राजनीतिक सरोकारों की प्रभावी अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उनका मानना है कि वर्तमान समय में जनता के द्वारा चुने गए राजनीतिज्ञ अपने आप को राजा-महाराजा समझते हुए राजाओं जैसा व्यवहार करने लगें हैं। राजनीतिज्ञ यह भूल गए हैं कि हम जनता के नौकर है, हमें जनता की सेवा के लिए चुना गया है। जहीर कुरेशी 'चांदनी का दुःख' नामक ग़ज़ल संग्रह में इस भ्रष्ट व्यवस्था पर प्रहार करते हुए लिखते हैं-

"इन प्रजातंत्रीय राजाओं की चौखट पर
फूलती-फलती है रही दरबार की भाषा
इनकी बातों में विरोधी दल का लहजा है
और उनके पास है सरकार की भाषा।"[3]

स्पष्ट है कि जहीर कुरेशी प्रस्तुत ग़ज़ल के माध्यम से लोकतंत्र में राजनेताओं का दोहरा चरित्र, दरबारी भाषा और विपक्ष - सत्ता के बीच की मिलीभगत पर गहरा व्यंग्य कसते हैं। राजनेता जब विपक्ष में होते हैं तो सत्ता पक्ष पर आरोप लगाते हैं, लेकिन जब सत्ता में होते हैं तो उन्हीं की भाषा बोलते हैं। जिससे लगता है कि वे सिर्फ पद और शक्ति के लिए अपनी भाषा बदलते हैं। संक्षेप में इनकी कथनी और करनी में बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। धर्म लोगों के संस्कार तथा आस्था से जुड़ा होता है। मनुष्य शिक्षित हो या अशिक्षित धर्म के जाल में फंस ही जाता है। वर्तमान समय में धूर्त, स्वार्थी, राजकीय नेता तथा धर्म के पंडित अपने स्वार्थ के लिए धर्म का गलत उपयोग करते हैं। विशिष्ट धार्मिक समुदायों से वोट प्राप्त करने के लिए राजनीतिक नेता एक समुदाय को दुसरे समुदाय से लड़वाते हैं। मूलतः प्रत्येक धर्म एकता की नसीहत देता है किंतु मनुष्य धर्म की नसीहत भूलकर धर्मस्थलों के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे-फसाद करता है। आज मुल्ला, मौलवी, पंडित, महंत, साधु आदि सभी आडंबर रचाकर समाज को गुमराह कर रहे हैं। ये सभी लोग धर्म के ठेकेदार बन चुकें हैं। हिंदी के प्रसिद्ध ग़ज़लकार राजेश रेड्डी दुष्यंत कुमार के नक्शे-कदम पर चलनेवाले धर्मनिरपेक्ष ग़ज़लकार है। धार्मिक आडंबर एवं भेदभाव की कड़ी निंदा करते हुए 'उड़ान' नामक ग़ज़ल संग्रह में राजेश रेड्डी लिखते हैं -

"पहले टुकड़ों में बॅटी सारी जमीं, फिर असमों
अब ख़ुदा भी बॅट गया मज़हब के हकदारों के बीच।"[4]

राजेश रेड्डी का मानना है कि किसी भी मंदिर-मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे में ईश्वर नहीं मिलता है। वहां तो केवल धर्म मिलता है और धर्म को बाँटनेवाले पंडित, पूजारी, मुल्ला और मौलवी मिलते हैं। राजेश रेड्डी लिखते हैं -

"कहॉ दैरो-हरम में रब मिलेगा
वहां तो बस कोई मजहब मिलेगा।"[5]

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में सांस्कृतिक चेतना प्रभावी रूप में मुखर हुई है। मानव एवं समाज की प्रगति में संस्कृति का उल्लेखनीय योगदान रहा है। प्रत्येक राष्ट्र एवं क्षेत्र की अपनी-अपनी एक अलग संस्कृति होती है। यह किसी समूह, समुदाय, संघ, जाति, धर्म, परिषद या वर्ग की वैयक्तिक संपत्ति नहीं है। मूलतः भारतीय संस्कृति हमारे अतीत का गौरवगान करती है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने भी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण करके आनेवाली पीढ़ियों को भारतीय संस्कृति के प्रति सजग एवं सचेत किया है। साथ ही उन्होंने समाज में सांस्कृतिक चेतना को जगाने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भारत की सांस्कृतिक विपन्नता पर गहरी चिंता प्रकट करते हुए सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के स्थापना की मनोकामना करते हैं। वे लिखते हैं -

"गोपाल अब वह चैन की बंशी बजेगी कब यहां
आलस्य से अविभूत हमको कर्मयोग सिखाइये

वह पूर्व की सम्पन्नता यह वर्तमान विपन्नता
अब तो प्रसन्न भविष्य की आशा यहां उपजाइये
यह आर्यभूमि सचेत हो फिर कार्यभूमि बने अहा
वह प्रीति-नीति बढ़े परस्पर नीति भाव भगाइये।"[6]

वर्तमान दौर में व्यक्ति से अधिक पैसे को प्रधानता दी जा रही है। बाजारवाद के कारण जहां आम आदमी प्राथमिक सुविधाओं के लिए स्वयं को बेच रहा है। वहीं दूसरी ओर पूंजीपतियों के महलों में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। आम आदमी की दयनीय हालत इतनी नाज़ुक है कि उसकी झोपड़ी भी बिकने के कगार पर खड़ी है। देश में भीषण आर्थिक विषमता के कारण सामाजिक जीवन मूल्य बदल गए है। अमीरों के महलों के सामने गरीबों को झुकना पड़ता है। आधुनिक समाज के इस दोहरे मापदंड को अभिव्यक्त करते हुए प्रसिद्ध ग़ज़लकार कुंवर बैचेन लिखते हैं-

"जहां इंसान की औकात से दौलत बड़ी होगी
महल तनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोपड़ी होगी।"[7]

दुष्यंत कुमार का मानना है कि भारत के आर्थिक क्षेत्र में निर्माण हुई समस्याओं के कारण आम आदमी को कई आर्थिक दुष्परिणामों का सामना करना पड़ रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी आम आदमी को अन्न, वस्त्र और निवारा जैसी प्राथमिक समस्याओं के लिए भी निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है। अधिकार, लोलुपता, सत्ता और धन प्राप्ति का लालच आदि के कारण राजनीतिज्ञ भ्रष्ट, स्वार्थी और अनैतिक बनकर आम आदमी का लगातार शोषण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ समाज के हितों को ध्यान में न रखते हुए अपने लाभ को प्रधानता देते हैं। सामान्य जनता राजनेताओं के घातक भ्रम का शिकार बन चुकी है। राजनीतिज्ञ अपनी इच्छापूर्ति के लिए देशहित को दांव पर लगाकर कई अपराध कर खुलें आम घूम रहे हैं। दुष्यंत कुमार इस स्थिति का पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं-

"इस सिरे से उस सिरे तक शरीके जुर्म हैं
आदमीया तो ज़मानत पर रिहा है या फरार।"[8]

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में पर्यावरण एक चिंतनीय विषय बनकर उभरा है। मानव के स्वार्थ के कारण जिस तरह से आज पारिस्थितिकी तंत्र नष्ट हो रहा है उसका दूरगामी परिणाम जीवन का अंत है। आज पर्यावरण प्रदूषण एवं संवर्धन एक वैश्विक विमर्श का विषय बन चुका है। समकालीन हिंदी ग़ज़ल इस गंभीर समस्या और उसके समाधान के प्रति प्रारंभ से ही चिंतित है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकार इन समस्याओं के कारणों का पता लगाकर उसके प्रभावों को संवेदनशीलता के साथ अपनी ग़ज़लों में व्यक्त कर रहा है। राष्ट्रकवि बृजेश सिंह हिंदी साहित्य के मूर्धन्य ग़ज़लकार हैं। पर्यावरण प्रदूषण एवं संरक्षण उनका आत्मीय विषय है। पर्यावरण प्रदूषण और उसका ह्रास देखकर कवि का मन आहत हो जाता है। उन्होंने पर्यावरण प्रदूषण का निराकरण करने हेतु पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन को अपनी ग़ज़लों का मुख्य प्रतिपादय बनाया है। बृजेश सिंह ने अपनी प्रसिद्ध ग़ज़ल 'समाधान' में पर्यावरण विमर्श की विस्तृत चर्चा की है। प्रस्तुत ग़ज़ल में उन्होंने जल प्रदूषण, विकिरण प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण आदि पर गहरी चिंता प्रकट करते हुए उसके संरक्षण की बात को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। बृजेश सिंह जल के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं -

"जल पर्यावरण को खत्म करने की साज़िश,
फक्त आदमी के वजूद को मानो मिटाना है।
वे के सानिध्य में पलती रही है सभ्यताएं,
पानी को पानी से ही नहाना है।।
वेद शास्त्र सब जोर देकर कहते 'बृजेश'
जल से ही आई दुनिया, जल में ही समान है।"[9]

स्पष्ट है कि जल का मानवीय जीवन में अनन्यसाधारण महत्त्व है। संसार का प्रत्येक क्षेत्र जल के बिना सूना है। विश्व में अगर कभी तीसरा महायुद्ध हुआ तो उसका मुख्य कारण जल ही होगा इसमें कोई संदेह नहीं है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश ने प्रत्येक क्षेत्र में सर्वाधिक प्रगति की है। किंतु भारतीय समाज एवं लोकतंत्र के सम्मुख आज भी कई समस्याएं एवं चुनौतियां हैं। युग चेतना से पूरी तरह निर्भर समकालीन हिंदी ग़ज़ल की केन्द्रीय दृष्टि सामयिक भारतीय समाज के परिवर्तित मूल्यों, उसकी दुश्वारियों, समस्याओं, विसंगातियों एवं चुनौतियों पर ही केंद्रित है।

वर्तमान समाज जिन समस्याओं एवं चुनौतियों से संघर्ष कर रहा है, समकालीन हिंदी ग़ज़ल भी उन्हीं समस्याओं एवं चुनौतियों से संघर्ष कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. साये में धूप - दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 21
2. हिंदी के प्रगतिशील और समकालीन कवि - डॉ. रणजीत, पृ. सं. 259
3. चांदनी का दुःख - जहीर कुरेशी, पृ. सं. 71
4. उड़ान - राजेश रेड्डी, पृ. सं. 30
5. वहीं, पृ. सं. 61
6. हिंदी की बेहतरीन ग़ज़लें - रवींद्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 16
7. आंधियों धीरे चलो - कुंअर बैचेन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 92
8. हिंदी के प्रगतिशील और समकालीन कवि - डॉ. रणजीत, पृ. सं. 259
9. जल-पर्यावरण-समाधान - डॉ. बृजेश सिंह, पृ. सं. 49

*****

हिंदी गजल साहित्य में डॉ आरिफ महात का योगदान

मनशेट्टी लक्ष्मी किसनराव
शोध निर्देशक – प्रो. डॉ. हाशमबेग मिर्झा
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, नलदुर्ग

हिंदी साहित्य में 'गजल' का महत्वपूर्ण स्थान है। ग़जल का उतना ही महत्त्व होता है जितना कविता या दोहे। मराठी साहित्य में भजन की तरह हिंदी साहित्य में गजल को महत्वपूर्ण माना गया है। गजल एक विशेष प्रकार की काव्य विधा है। हिंदी गजल अरबी, फारसी मुल्क की एक काव्य विधा है। इसमें प्रेम, विरह, दर्द जीवन के गहरे भाव को विशेष छंद (बहर) और तुकबंदी (काफिया रदीप) के साथ प्रत्येक शेर दोहों को स्वतंत्रता से देते हुए व्यक्त किया जाता है। गजल उर्दू हिंदी साहित्य का एक लोकप्रिय एवं भावुक रूप है। गजल एक प्रेम पूर्ण कविता या कविता का रूप है, जिसकी उत्पत्ति अरबी कविता से हुई है। जो अक्सर आध्यात्मिक और रोमांटिक प्रेम से संबंधित होती है। इसे प्रियतम से वियोग या वियोग के दर्द और उस दर्द के बावजूद प्रेम की सुंदरता दोनों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में समझा जा सकता है।

ग़जल की असली कसौटी उनकी प्रभावोत्पादकता होती है। गजल का हर एक शेर परिपूर्ण होता है। मूल रूप से अरबी फारसी से लिए गजल हिंदी और उर्दू में अपनाई गई है। '"गजल एक की बहर और वजन के अनुसार लिखी गए शेरों का समूह है। गजल के प्रारंभिक शेर को "मतला" कहते हैं ग़जल के अंतिम शेर को "मकता" कहते हैं। मकते में सामान्यतः शायर अपना नाम लिखता है।"1' गजल एक ऐसी कविता है जिसमें भावनाओं का सागर कुछ छंदों में समाया हुआ होता है जहां हर शेर एक नया अनुभव और हर पंक्ति एक नया अहसास देती है अमीर खुसरो और कबीर से होते हुए गजलों ने आधुनिक काल में प्रवेश किया है गजल को समृद्ध बनाने में गुलजार, नीरज, दुष्यंतकुमार, कुंवर बेचैन राजेश रेड्डी, रविंद्रनाथ त्यागी, डॉ. राहत इंदौरी का विशेष योगदान रहा है।

आधुनिक गजल करो में 'डॉ आरिफ महात' का महत्वपूर्ण नाम है। डॉ. आरिफ विवेकानंद कॉलेज कोल्हापुर साहित्य में हिंदी के सहायक प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत है। इनका जन्म '1 जुलाई 1980' में कोल्हापुर में हुआ है। जिन्होंने हिंदी में गोल्ड मेडल (स्वर्ण पदका) प्राप्त किया है। हिंदी में उन्होंने नेट की है एवं पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की है। अध्यापक के साथ-साथ डॉ. आरिफ जी को लेखन कार्य करने में काफी रुचि रही है। आप एक प्रसिद्ध हिंदी गजलकार एवं अनुवादक के रूप में जाने जाते है।

डॉ आरिफ बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार है। ऐसा कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मूल रचनाओं का सृजन कार्य भी उन्होंने किया ही है। साथ ही संपादित कार्य एवं अनुचित कार्य भी किया है। गंगा प्रसाद विमल द्वारा लिखित मराठी कविता संग्रह का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया है जिसका शीर्षक है और अलिखित अदिखत।

एक सामान्य परिवार में जन्मे डॉ. आरिफ ने अपने सृजन कार्य से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। 'आरिफ जी को लेखन कार्य संपादन कार्य एवं अनुचित कार्य के लिए कई सम्मानों से एवं पुरस्कारों से नावाचा गया है।' डॉ. आरिफ जी प्रसिद्ध गजलकार है। उन्होंने कहीं गजल लिखे हैं। देश के प्रति उनमें जो प्रेम है वह उनके गजलों में नजर आता है। स्वतंत्रता दिवस पर बधाई देते हुए वतन के बारे में यह लिखते हैं,

"सजदे जितने भी करूं तेरे दामन में
खाक हो मिल जाऊं तेरे मिट्टी में
तिरंगे में लिपटा हुआ जब जनाजा निकले
लोग शामिल करें मुझे तेरे आशिकों में।"3

आज हम देखते हैं कि भारत को विकसित करने के लिए, सुपर इंडिया भारत बनाने के लिए प्रकृति को रौंदा जा रहा है। पहाड़, नदियां, जंगल नष्ट करके सड़के अपार्टमेंट बनाए जा रहे है जिस पर डॉ. आरिफ ने लिखा है,

"तुम्हें वह गुलमोहर का पेड़ याद है
जिसके तले कभी हमारे सपने पले थे
वह आज उजड़ चुका है
सुना है किसी विकास के

चपेट में आ गया है।"4'

आज लोग केवल दिखावा परस्त हो गए है अपनी शान बढ़ाने के लिए भी किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। जिनके बारे में डॉ. आरिफ जी लिखते हैं,

"यूं ना पगड़ी उछाल करो शौक के लिए।
एक उम्र बीत जाती है इज्जत कमाने के लिए।
इतना इतराना न कर खुद के आईना होने पर।
बड़ी कालिख लगी तुम्हें खुद को चमकाने के लिए।"5'

मनुष्य "मैं" यानी अहंकार में इतना डूब गया है कि उसे उचित अनुचित का ख्याल ही नहीं रहा है। "मैं" के कारण हम अपनों से कोसों दूर जाते हैं। "मैं" ही मनुष्य को मनुष्य से तोड़ता है "मैं" के बारे में आरिफ जी लिखते हैं,

''"मैंने मेरे "मैं" के रेशे को
उधेड़बुनकर देख लिया
किसी रेशे में मुझे
ऐसा कुछ भी ना मिला
जिस पर इतराया ना जा सके
आखिर ऐसी कौन सी चीज है
जिस पर मैं है रहा हूं
जरा आप भी अपने "मैं" को
टटोल कर देखिए।" 6'

वक्त की यह खासियत है कि वह कैसा भी हो गुजरता अवश्य है वक्त। किसी के लिए भी रुकता नहीं है। बुरे के बाद अच्छा और अच्छे के बाद बुरा वक्त आना स्वाभाविक है। वक्त बदलता रहता है इस पर अपनी गजल पेश करते हुए डॉ. आरिफ लिखते हैं,

"धीरे से कहो चीखने की जरूरत नहीं।
पास ही हूं मैं तुम्हारे सुनो बहरा नहीं।
वक्त की खूबसूरती यही है आरिफ।
अच्छा बुरा जैसे हो कभी ठहरा नहीं " 7'

प्रेम एक खूबसूरत एहसास है। प्रेम में हम सब कुछ भूल जाते हैं। प्रेम को अंधा कहा जाता है। प्रेम विश्वास, इंतजार और वफ़ा का दूसरा नाम है। जब यही प्रेम बेवफा हो जाता है तो आशिक की हालत बहुत ही खास्ता हो जाती है। आशिक बेवफा की बेवफाई सह नहीं सकता। डॉ. आरिफ महात के शब्दों में,

"तुझसे बिछड़ कखुद से दूर हो गया
तेरे बगैर टूटकर चकनाचूर हो गया
गाता हूं तराने तेरी बेवफाई के सरेआम
अब तो मैं दिलजलो में मशहूर हो गया
साथ मुकाम पार कर इश्क बड़ा सूफियाना
तेरी जियारत हो तो कहूं मैं मकबूल हो गया।" 8'

दिल में चाहत होने के बावजूद भी प्रेमिका प्यार का इजहार नहीं करती। प्रेमिका के इजहार के लिए प्रेमी लालायित है। वह प्रेमिका से कहता है,

"बात करनी है तो करो खुलकर करती क्यों नहीं?
बात ही तो है बात पर से पर्दा हटती क्यों नहीं?
आखिर तुम अपने चेहरे से जुल्फे हटती क्यों नहीं।
हंसी फूल हो माना चाहता था भंवरा बन मंडराऊ
मंडराता भी लेकिन तुम परते खोलने क्यों नहीं।

भूल चुके हो तुम हमें अच्छा मान भी लेते हैं फिर
किताबों में रखे सूखे फूलों को फेंकती क्यों नही।"9'

डॉ.आरिफ जी ने जीवन की स्थिति को जीवन की ट्रेजेडी को जीवन में हो रहे भ्रष्टाचार को अपने गजल के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रेम, प्रेमिका की हालत, विरह वेदना, इंतजार की पीड़ा इन सभी का भी चित्रण डॉ आरिफ जी के गजलों में दिखाई देता है। आधुनिक यग में जहां गजल जैसी काव्य विधा लुक्त सी होती जा रही है, वहां डॉ. आरिफ जी ने अपने गजल संग्रह के माध्यम से गजल साहित्य को जीवंत रखने का सराहनीय प्रयास किया है और कर रहे हैं।

'संदर्भ सूची'

1) वेबसाइट से
2) दस्तक (कविता सग्रह) डॉ आरिफ महात अंतिम कवर पेज से
3) डॉ आरिफ महात की गजल
4) डॉ आरिफ महात की गजल
5) डॉ आरिफ महात की गजल
6) डॉ आरिफ महात की गजल
7) डॉ आरिफ महात की गजल
8) डॉ आरिफ महात की गजल
9) डॉ आरिफ महात की गजल

*****

हिंदी फिल्मी गीतकार एवं ग़ज़लकार

सागर जिवराज थोरात
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठा विश्वविद्यालय, छत्रपती संभाजीनगर
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, नलदुर्ग 8668850092
sagarthorat0707@gmail.com

प्रस्तावना

हिंदी फिल्मों को गीतकार एवं ग़ज़ल कारों ने अपने गीत तथा ग़ज़ल से निश्चित रूप से समृद्ध किया है | हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा में गीत और ग़ज़ल का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। गीत जहाँ जनसामान्य की भावनाओं को सरल एवं सहज भाषा में अभिव्यक्त करता है, वहीं ग़ज़ल मानवीय संवेदनाओं, दर्शन और जीवन-सत्य का सूक्ष्म काव्यात्मक रूप प्रस्तुत करती है। हिंदी सिनेमा ने इन दोनों विधाओं को व्यापक मंच प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप फिल्मी गीतकारों एवं ग़ज़लकारों ने साहित्य और मनोरंजन के बीच एक सशक्त सेतु का निर्माण किया।

हिंदी फिल्मी गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहे, बल्कि उन्होंने सामाजिक यथार्थ, प्रेम, पीड़ा, विद्रोह और मानवीय मूल्यों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से हिंदी फिल्मी गीतकार एवं ग़ज़लकार आधुनिक हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ माने जा सकते हैं।

हिंदी फिल्मी गीतों की परंपरा का विकास भारतीय संगीत, लोक परंपरा और शास्त्रीय काव्य से जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक दौर में फिल्मी गीतों पर ब्रज, अवधी और उर्दू काव्य-परंपरा का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। समय के साथ गीतों की भाषा सरल होती गई, किंतु उनके भाव और साहित्यिक स्तर में कोई कमी नहीं आई।

फिल्मी गीतों ने सामाजिक परिवर्तन, स्वतंत्रता आंदोलन, प्रेम और मानवीय संघर्ष को सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया। गीतकारों ने आम जनता की भाषा में गूढ़ भावनाओं को प्रस्तुत कर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया।

ग़ज़ल मूलतः एक शास्त्रीय काव्य-विधा है, जिसकी जड़ें फ़ारसी और उर्दू साहित्य में हैं। हिंदी सिनेमा ने ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फिल्मी ग़ज़लों ने शास्त्रीयता और लोकप्रियता के बीच संतुलन स्थापित किया।

फिल्मी ग़ज़लों में प्रेम, विरह, अकेलापन, सामाजिक विषमता और दार्शनिक चिंतन प्रमुख विषय रहे हैं। इन ग़ज़लों ने ग़ज़ल विधा को सीमित साहित्यिक वर्ग से निकालकर आम श्रोताओं तक पहुँचाया।

बीजशब्द- हिंदी सिनेमा, फिल्मी गीत, ग़ज़ल, गीतकार, साहित्य, संस्कृति

हिंदी सिनेमा में गीतों के माध्यम से उर्दू शायरों ने विविध विषयों को स्पर्श किया है इन गीतकारों में साहिर लुधियानवी, कैफ़ी आज़मी, मजरूह सुलतानपुरी, कैफ इरफानी आदि कवियों का विशेष योगदान है | उर्दू और हिंदी फिल्मों का रिश्ता काफी पुराना है | आदिकाल से ही शायरी और गीत अपना स्थान बनाए हुए हैं | उर्दू भाषा की मिठास अल्फाज का जादू गीत तथा उर्दू भाषा की गहराई अविस्मरणीय है |

गीतकारों की यह परंपरा हमें सन 1938 से सशक्त रूप से मिलती है | जहाँ स्टींग सींगर के गीत आरजू लखनवी ने लिखे थे -

" सकूं दिल का मयस्सर गुल व समर मे नहीं ,
जो आशियों में है अपने वह बागभर में नहीं |१

बहजाद लखनवी ने अनोखा प्यार सन 1948 इस पर फिल्म में इंतजार प्रेमी प्रेमिकाओं के मन में किस प्रकार से अनोखी भावना छोड़ देता है इसका सुंदरता से वर्णन किया |

"मेरे लिए वे इंतजार छोड़ गए,
गए तो एक बाहर छोड़ गए"|२

सन 1948 के गीतकारों में और गीतकार है नाजिम पानीपती उनका 'मजबूर' फिल्म के लिए लिखा गीत टूटे हुए दिल की दास्तां बया करता है

" मेरा दिल तोड़ा मुझे कहीं का ना छोड़ा
तेरे प्यार ने नाय तेरे प्यार ने

मेरा मनवा डोले घड़ी घड़ी
हार किस उलझन में ये जान पड़ी "।३

'परदा' फिल्म के गीत लिखने वाले तनवीर नकबी तथा गुल सनोवर सन 1953 के गीत कैफ इरफतनीजी ने लिखे थे | जो काफी पसंद किए गए सन 1951 में बनी ' मल्हार ' सिनेमा के गाने इन्दीवर ने लिखे थे जिन्हें मुकेश जी ने अपनी दर्द भरी आवाज में गाया था,

" बड़े अरमानों से रखा है बलम तेरी कसम,
ओ बलम तेरी कसम,
प्यार की दुनिया में यह पहला कदम,
हो पहला कदम |"४

सन 1958 के दौर में एक और शायर सबके दिमाग पर छाए हुए थे जिनका नाम था शैलेंद्र ' अनाड़ी', ' यहूदी', ' हरियाली और रास्ता' आदि फिल्मों के उनके गीत एक ले के साथ-साथ जीवन का निचोड़ भी प्रस्तुत करते हैं -

" किसी की मुस्कुराहटों पर हो निसार
किसी का दर्द मिले सके तो ले उधार
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार
जीना इसी का नाम है |"५

सन 1957 में ' शाहजहाँ ' फिल्म परदे पर आयी और उसके गीत मशहूर शायर मजरूह सुलतानपुरीजी ने लिखे थे | इसके बाद उनके गीतों की और कई फिल्में आई उसमें 'फुटपाथ' सन 1953, 'आखरी दाव' सन 1958 के गीतों को काफी सफलता मिली | ' आखरी दाव ' का वह गीत जो मोहम्मद रफी साहब जी ने गाया था अजरामार हुआ-

" तुझे क्या सुनाऊं मैं दिलरुबा तेरे सामने मेरा हाल है
तेरी एक निगाह की बात है मेरी जिंदगी का सवाल है|"६

मजरूह सुलतानपुरीजी मैं अपने गीतों को ' एक नजर ' सन 1972, ' मेरे हमदम मेरे दोस्त फिल्मों में अपनी शायरी का एक अलग अंदाज पेश किया | उनकी शायरी में जो दर्द और इस नजर आती है वह अनुपम है |

" हम थे जिनके सहारे वह हुए ना हमारे
डूबी जब दिल की नैया सामने थे किनारे |"७

मिर्ज़ा ग़ालिब (1797–1869)

दार्शनिक ग़ज़ल, जीवन-मृत्यु, ईश्वर, अहं और पीड़ा के कवि
“हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।”८

मनुष्य की इच्छाएँ अनंत हैं। बहुत कुछ पाने के बाद भी मन संतुष्ट नहीं होता। ग़ालिब के आत्मिक संघर्ष और जीवन की अपूर्णता को दर्शाता है। मानव मनोविज्ञान की गहरी समझ ग़ज़ल को दर्शन की ऊँचाई दी आज भी जीवन की सच्चाई को व्यक्त करता है |

“दिल ही तो है न संग-ओ-ख़िश्त, दर्द से भर न आए क्यों।”
संवेदनशीलता को मानवीय गरिमा के रूप में प्रस्तुत करता है।

मीर तकी मीर(1723–1810) दर्द, विरह और टूटे दिल की सच्ची आवाज़

“पत्थर की भी तक़दीर सँवर सकती है,
शर्त ये है कि उसे दिल से तराशा जाए।”
मीर की असली प्रसिद्ध पंक्ति
“मीर क्या सादा हैं, बीमार हुए जिस के सबब,
उसी अत्तार के लड़के से दवा लेते हैं।”९

जिसने दर्द दिया, उसी से इलाज की उम्मीद — प्रेम की विवशता।
मीर का जीवन दुखों, गरीबी और असफल प्रेम से भरा था।

ग़ज़ल में सच्चा दर्द

सरल भाषा, गहरा भाव
"ख़ुदा-ए-सुख़न" कहलाए
"इब्तिदा-ए-इश्क़ है रोता है क्या,
आगे-आगे देखिए होता है क्या।"

प्रेम की यात्रा के आरंभिक कष्टों का यथार्थ चित्रण।

निदा फ़ाज़ली (1938–2016) आधुनिक जीवन, इंसानियत और यथार्थ के गीतकार

"कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता,
कहीं ज़मीं तो कहीं आसमाँ नहीं मिलता।"

जीवन में सब कुछ एक साथ नहीं मिलता — यही सच्चाई है।

आधुनिक मनुष्य की अपेक्षाओं और निराशाओं का प्रतिबिंब।

सरल भाषा में गहरी बात
आम आदमी से सीधा संवाद
आधुनिक ग़ज़ल को नई पहचान

"घर से मस्जिद है बहुत दूर, चलो यूँ कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए।"

मानवता को धर्म से ऊपर रखा- सामाजिक चेतना दर्शाती है |

निष्कर्ष:- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट रूप से हम कह सकते हैं कि, हिंदी फिल्मी गीतकार यह वह ग़ज़लकार का हिंदी फिल्मों को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है | उनके गीतों ने तथा ग़ज़ल ने हिंदी ही नहीं हिंदीतर भाषिकों के मन में भी अपनी अमित छाप छोड़ी है | हिंदू ,मुसलमान, सिख और ईसाइयों को जोड़ने की अहम भूमिका इन गीतकारों ने तथा ग़ज़ल कारों ने निभाया है |

संदर्भ :-

१. स्टिंग सींगर फिल्म के
२. अनोखा प्यार फिल्म के उद्धत
३. मजबूर फिल्म से उद्धत
४. मल्हार फिल्म से उद्धत
५. अनाड़ी फिल्म से उद्धत
६. आखरी दाव फिल्म से उद्धत
७. नगमा जावेद मालिक, अनभै, जुलाई दिसंबर प.नं.120
८. हिंदी ग़ज़ल का विकास- त्रिपाठी, श्याम सुंदर
९. नया ज्ञानोदय - विशेषांक (गीत-गजल)

*****

हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा एवं विकास

सुमेध जालिंदर इंगले
शोधछात्र, हिंदी अनुसंधान केंद्र,
के.जे.सोमैया महाविद्यालय, कोपरगांव
जि.अहिल्यानगर (महाराष्ट्र)
मो. नंबर- 9423482694

हिंदी ग़ज़ल यह हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा हैं। इसने हमारे साहित्य को समृद्ध किया है। हिंदी ग़ज़ल के उद्गम को लेकर भी विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं। प्रथम यह कि हिंदी ग़ज़ल का उद्भव आदिकाल के साथ ही दिखाई पड़ता है। आदिकाल में हिंदी के उत्थान के साथ साथ हिंदी ग़ज़ल परंपरा को अमीर खुसरो से जोड़ा गया है। अमीर खुसरो सूफी संत थे इसलिए गजल के छंद शास्त्र की जानकारी उन्हें थी और उस समय तक हिंदी साहित्य में उर्दू का जन्म नहीं हुआ था। इसलिए उन्होंने हिंदी में ही अपनी अभिव्यक्ति की। विद्वानों ने अमीर खुसरो की ऐसी ग़ज़ल को खोज निकाला जिसका एक मिसरा फ़ारसी में और दूसरा मिसरा हिंदी भाषा में था। खुसरो के बाद उनके बाद संतकवि कबीर का नाम आता है,जिनका लालन पालन भी मुसलमान परिवार में हुआ था। कबीर के समय तक भी हिंदी भाषा में अरबी फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग होने लगा था परन्तु उर्दू का अस्तित्व नहीं था। इसलिए हिंदी ग़ज़ल का उद्भव आदिकाल से और उसकी विकास परंपरा अमीर खुसरो से मानी जाती हैं।

भूमिका:

सभी कलाओं में काव्य कला को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। ग़ज़ल भी काव्यकला का ही एक रूप है। आजकल ग़ज़ल का महत्व बढ़ा हैं। प्रारंभ में ग़ज़ले राजदरबार एवं कोठियों तक ही सीमित थी किन्तु अब वे अपनी पहुंच जनसाधारण तक बना चुकी हैं। शताब्दियों पहले ग़ज़लों का विकास अरबी फ़ारसी भाषा में हुआ था किन्तु कालांतर में ग़ज़लों ने अपना क्षेत्र विस्तार करते हुए हिंदी साहित्य में भी स्थान बना लिया। साहित्य समाज का आईना माना जाता है और जिस साहित्य में सामाजिक, भावनिक और सामाजिक समस्याओं को उठाने की जितनी भावनाएं होंगी उसका महत्व भी उसी अनुरूप बढ़ जाता हैं। वर्तमान ग़ज़लों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समस्याओं को स्थान मिलने लगा है, जिससे ग़ज़ल राजदरबार और कोठियों से निकलकर समाज के सभी लोगों तक पहुंच बनाने में सक्षम हुई हैं।

ग़ज़ल विधा का उद्भव:

वर्तमान में ग़ज़ल को काव्य की महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थान प्राप्त है। काव्य की अन्य विधाओं से यदि इसकी तुलना की जाये तो ग़ज़ल सबसे प्रभावशाली एवं पाठकों का मन मोह लेने वाली एक विधा हमारे समक्ष आती हैं। ग़ज़ल को हिंदी में लाने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा किया गया, जिनमें कुछ नाम अग्रलिखित है – अमीर खुसरो, कबीर,श्रीधर पाठक,जानकी वल्लभ शास्त्री, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' , भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद आदि। परंतु ग़ज़लों को सर्वप्रथम प्रतिष्ठित करने का काम दुष्यंत कुमार ने ही किया है। ग़ज़ल अरबी - भाषा का शब्द है,जिसका अर्थ मुहब्बत के जज्बात व्यक्त करना है।अरब देश में पहले ग़ज़ल को 'कसीदा' कहते थे। कसीदा अर्थात किसी की शान में कुछ कहना। जैसे दादरा गाने से पहले शेर पढ़ा करते हैं उसी तरह कसीदा से पहले कड़ी बांधने के लिए ग़ज़ल कहते थे। फ़ारसी में अन्य स्थानों पर ग़ज़ल को सुंदर स्त्रियों से बातचीत करना बताया गया है। मौलाना अल्ताफ हुसैन ग़ज़ल को "जवानी के हाल का बयान करना भी कहते हैं " **1** वस्तुत: ग़ज़ल शब्द के शाब्दिक अर्थ अनेक हैं। ग़ज़ल अपने आप में साहित्य की एक धनी विधा है। ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है लेकिन फ़ारसी भाषा में मिलती हैं। फ़ारसी भाषा से आगे चलकर उर्दू भाषा में उसका आगमन हुआ।आज मराठी, हिंदी, पंजाबी, गुजराती भाषाओं में भी ग़ज़ले लिखी जाने लगी हैं। सभी काव्य विधाओं में ग़ज़ल ही एक ऐसी काव्य विधा है, जिसने पुराने विचारों को छोड़कर नये को अपनाते हुए अपनी गरीमा बढाई हैं। "वास्तविकता यह हैं कि ग़ज़ल विखराव के युग में अपने आप को समेटने और संतुलित करने पर जोर देती रही हैं।"**2** अमीर खुसरो में हिंदी ग़ज़ल का उद्भव तलाशते हैं तो अमीर खुसरो के डेढ़ सौ साल बाद कबीर का नाम आता है और कबीर के लगभग पांच सौ वर्षों बाद भारतेन्दु का नाम हिंदी ग़ज़ल की विकास परंपरा से जोड़ा जाता है इनके बीच की कुछ शताब्दियों में यह परंपरा कहीं दिखाई नहीं देती। डॉ.नरेश निसार लिखते हैं कि – " साहित्य के शोधकर्ताओं में यह प्रवृत्ति आम देखी जाती हैं वे जिस विषय पर काम करते हैं तो सबसे पहले उसकी प्राचीनता सिध्द करने में लग जाते हैं।"**3** लगभग सभी साहित्यकार हिंदी ग़ज़ल का उद्भव अमीर खुसरो से ही मानते है, और यह भी स्वीकार करते है कि व्यवस्थित रूप हिंदी में ग़ज़ले

आधुनिक काल में कही जाने लगी। कोई छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के 'बेला' काव्य संग्रह से तो कोई सुधी समीक्षक जयशंकर प्रसाद से हिंदी ग़ज़ल लेखन परंपरा को स्वीकार करते हैं।यह मानना उचित होगा कि जिस प्रकार अमीर खुसरो ने मुकरियां लिखी वैसे हिंदी में ग़ज़ले भी लिखी गई। ग़ज़ल की परिभाषा विद्वानों ने अपनी अपनी ढंग से दी है। किसी शफी नामक शायर ने कहा है कि –

" शायरी क्या है,दिली जज्बात का इजहार है,"
दिल अगर बेकार है, तो शायरी भी बेकार है।" **4**

इस तरह शायरी का सीधा संबंध दिल से बताया गया है। 1400 वर्ष पूर्व अरबों ने ईरान को जीत लिया था तो उन्होंने अरबों से ग़ज़ल काव्य को लेकर बहुत सजाया संवारा तथा विकास किया। फ़ारसी में ग़ज़ल को "बाजनान गुफ़्तगू कर देना " के रूप में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है औरतों से बातचीत करना। " ग़ज़ल किसी तथ्य को भाव द्वारा समझने का प्रयास है, मनुष्य के अपराजित महात्म्य का अभिषेक है, अनुभव की पगडंडी और विचारों के चौरास्तों पर की गई शब्द की पदयात्रा है। ग़ज़ल उत्तेजना नहीं वरन् एक सार्थक विचार है।" **5**

" ग़ज़ल हिंदी-उर्दू-फारसी की एक खूबसुरत, लोकप्रिय और प्रशंसनीय काव्य -विधा हैं। दूसरी ओर वह मन के भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन भी है। ग़ज़ल जिंदगी का आइना भी है। ग़ज़ल छंदोबध्द अंतर्मुखी काव्य है।" **6** फ़िराक़ गोरखपुरी ने कहा है कि ग़ज़ल के शेरों में इंसानियत का होश आ जाता हैं। वास्तव में ग़ज़ल टुटे हुए दिलों का दर्द हैं। ग़ज़ल गागर में सागर भरता है। ग़ज़ल में केवल प्यार और मोहब्बत की बात नहीं की जाती बल्कि इसमें सम्पूर्ण मानवीय व्यवहार समाया हुआ है।

" दामने इश्क में कोने न सिमट आती हैं,
दोनों आलम की ख़बर हो,तो ग़ज़ल होती है।" **7**

वास्तविकता यह है कि ग़ज़ल की आधुनिक काव्य का बिखरा हुआ रुप है। जिस प्रकार कविता मानव के हृदय के अंतस्थल से निकलती है उसी प्रकार कविता ग़ज़ल भी। जब हम हिंदी में ग़ज़लों के आगमन की बात करते हैं तो उसके पूर्व तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि को देखना आवश्यक हो जाता है। भारत में मुस्लिमों का आगमन मुहम्मद घोरी के शासनकाल से ही प्रारंभ होता है।यही वह समय था जब फ़ारसी उर्दू ग़ज़लों का बोलबाला था। इन्हीं लोगों के सम्पर्क में आकर हिंदी ग़ज़लों का भी उद्भव होना प्रारम्भ हुआ। गुलाम वंश की अंतिम कड़ी गयासुद्दीन बलवन के दरबार में एक प्रसिद्ध कवि और शायर रहा करते थे जिनका नाम था अमीर खुसरो। इन्हीं अमीर खुसरो को भारत में ग़ज़ल का जन्मदाता माना जाता है। लेकिन हिंदी में ग़ज़लों का स्वरूप वैसा नहीं था जैसा फ़ारसी में था। हिंदी ग़ज़ल देशभक्ति, इंसानी दर्द और कौमी बेदारी से भरी हुयी हैं । " यह विचारणीय है कि उर्दू भाषा के विद्वान फारुख साहब ने विषय वस्तु की दृष्टि से उर्दू और हिंदी की ग़ज़लों में अंतर स्पष्ट करते हुए हिंदी ग़ज़लों में उर्दू शब्द का प्रयोग भी किया है। **8**

वर्तमान ग़ज़ल विधा:

'दिवान -ए-कामिल अमीर खुसरो 'में इनकी ग़ज़लों की संख्या 1726 मानी जाती है। अमीर खुसरो के भारत में पैदा होने के कारण उनकी ग़ज़लों में फ़ारसी संस्कार के साथ साथ हिंदी संस्कार भी परिलक्षित होते हैं।एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"जब मार देखा नैन भर दिला की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब,राखे उसे समझाय कर
जब आंखों से ओझल भया, तड़पने लगा मेरा जिया
हक्का इलाही क्या किया, आंसू चलें भर लाचकर
तू तो हमारा यार है, तुझ पर हमारा प्यार है ....।" 9

अमीर खुसरो के बाद हिंदी ग़ज़लों को आगे ले जाने में तात्कालिक संतकवि कबीर का भी योगदान महत्वपूर्ण हैं। कबीरदास ने अपनी वाणी में यत्र तत्र ग़ज़लों का समावेश किया है।

" हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या ?
रहे आजाद या जग से हमन दुनिया से भारी क्या?" **10**

आधुनिक काल में भारतेंदु, श्रीधर पाठक, जानकी वल्लभ शास्त्री, हरिऔध, जयशंकर प्रसाद आदि का भी बड़ा योगदान रहा है। हिंदी ग़ज़ले फ़ारसी – उर्दू ग़ज़लों की तरह प्रेम, इश्क, शराब -शबाब की बातें नहीं करती बल्कि उनमें समकालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक चेतना एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन के विक्षोभ का वर्णन परिलक्षित होता है। समकालीन ग़ज़लकार दुष्यंत

कुमार ने हिंदी ग़ज़लों को एक नया आयाम प्रदान किया है। दुष्यंत कुमार के ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप ' की लोकप्रियता ने बहुत से कवियों विशेषतया छंदधर्मी कवियों को अपनी ओर उन्मुख कर दिया है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़लों पर फ़ारसी – उर्दू ग़ज़लों का प्रभाव अवश्य है लेकिन हिंदी ग़ज़लों में जिन सामाजिक मूल्यों को उठाया जा रहा है वे पूर्णतः भारतीय है और हिंदी काव्य के विकास की एक महत्वपूर्ण शाखा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१) जदीद उर्दू शायरी – मौलाना अल्ताफ हुसैन, पृ.सं.48
२) सन्नाटे में गूंज – डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल,पृ.सं.10
३) हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा – डॉ.नरेश निसार,पृ.सं.40
४) ग़ज़ल एक अध्ययन – चातक गोविंद पुरी – सीमांत प्र.1991,पृ.सं.11
५) रस्सियां पानी की – डॉ.कुंवर बेचन, प्रगति पृ.सं.12
६) हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम – डॉ.सरदार मुजावर पृ.सं.213
७) शामियाने कांच के – डॉ.कुंवर बेचन पृ.सं.10
८) हिंदी ग़ज़ल संदर्भ और सार्थकता – डॉ.वेद प्रकाश अमिताभ, पृ.सं.24
९) अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य – डॉ.भोलानाथ तिवारी,पृ.सं.133
१०) कविता कौमुदी, भाग चौथा – सं.रामनरेश त्रिपाठी,पृ.सं.06

*****

डॉ.जेबा रशीद के'रिश्ते क्या कहलाते हैं'कहानीसंग्रह में चित्रित महिलाओं की मनोदशा

प्रा.रहिसा या. मिर्झा
एस.एस.ए.आर्ट्स ऍण्ड कॉमर्स
कॉलेज सोलापुर।

प्रो. (डॉ) हाशमबेग मिर्झा
आर्टस्,सायन्स,कॉमर्स महाविद्यालय
नलदुर्ग, जिला – धाराशीव।

सार-

साठोत्तरी साहित्यकार डॉ.जेबा रशीद ने अपने साहित्य में आधुनिक महिलाओं की मानसिकता को व्यक्त किया है।इन कहानियों में एक संस्कारशील,चरित्रवान,अभिमानी औरत की परेशानियों को व्यक्त किया है।एक स्त्री के जीवन में उसका पति अच्छा चरित्रवान हो तो ही उस स्त्री की जिंदगी संवर जाती है।उसके जीवन में चैन और सुख होता।उसका जीवन खुशहाल होता है।वह कितनी भी अमीर क्यों न हो उसका पति धनवान नहीं चरित्रवान होना आवश्यक है।एक मजबुर औरत पुरुषप्रधान समाज में जीये तो कैसे जिये?इसका बहुत ही दर्दनाक वर्णन किया है।मध्यवर्गीय औरतों पर बहुत पाबंदीया होती है।उस पर सामाजिक,चरित,जहनी और कई प्रकार की रस्सियां बंधी होती है।इसलिए मध्यवर्गीय औरतें जज्बाती और डरपोक होती है।वे कुछ कर नहीं पाती।इस विचार को लेखिका ने बहुत सुंदर ढ़ंग से व्यक्त किया है।एक लड़की जब प्रेम करती है और प्रेमी के कहने पर वह अपने परिवार को ठुकराकर अपने प्रेम को पाने के लिए आजीवन संघर्षरत रहती है।चौका-बर्तन करनेवाली औरत की समस्याओं को भी व्यक्त किया हैं। दो अंतर्जातीय परिवार के स्त्री-पुरुष के सहसंबंध व्यक्त किया।

बीज शब्द – साहित्यकार जेबा रशीद,रिश्ते क्या कहलाते हैं,आधुनिक महिलाएँ,वैचारिक मानसिकता,मनोदशा आदि।

आमुख-

'रिश्ते क्या कहलाते हैं'यह कहानीसंग्रह जेबा रशीद ने राजस्थानी ग्रंथागार सोजती गेट जोधपुर राजस्थान से 2013 में प्रकाशित किया है।लेखिका ने इसमें बदला क्यों.., तृष्णा,अनारकली,सायबान,बरसात,मैला आंचल,बावरा मन,अनाम रिश्ते, प्रश्न,अस्मिता के लिए,उसके खातिर,मेरी चीनी समाप्त हो गई,दर्द के रिश्ते आदि।बदला क्यों - लेखिका ने इस कहानी में दो सहलियों के जीवन को व्यक्त किया है।इसमें शबनम और वीना दोनों बचपन के सहेलियां है।अनेक वर्षों के बाद वे मिल गये है।दोनों शादीशुदा जीवन बीता रहे है।वीना की शादी पवन से हुई है।वीना अपने पति के साथ खुश नहीं है।वह शबनम को अपना दर्दभरा जीवन कैसे बीता रही है।।लेखिका लिखती है,"मैं बहुत गरीब हूं।धन दौलत से कोई सुखी नही होता..स्त्री करोडपती क्यों न हो अगर उसका पति चरित्रहीन हो तो उसकी बीवी बेहद गरीब हुई ना।"वीणा अपने पति से बेहद नाराज रहती है।वह अपने आस-पास के औरतों को और उनकी पतियों को हमेशा निहराती रहती है।उसकी एक कामवाली जसोदा उसके पति के बारे में बताती है।जसोदा का पति बहुत ही गरीब और शराबी है।जसोदा उसके हर बात से नाराज है लेकिन उसके चरित्र पर नाज करती है।वह वीना को बता रही है कि मैं रात-दिन काम करती हूँ,खुद कमाती हूँ उसे और उसके बच्चों को पालती हूँ।लेखिका लिखती,"सारा दिन उसकी व बच्चों की रोटी जुटाने में लगी रहती हूँ।फिर भी पति के हाथ की मार खाती हूँ....अपने शरीर की पीड़ा भुलाकर उसे सुख देती हूँ।उसका हर जुल्म बर्दाशत करते हुए उसके लिए शराब का इंतजाम करती हूँ।"जसोदा यह सब बताकर वीणा के सामने रोती है।अपना दर्दभरा मन वह वीणा के सामने हलका कर रही है।वीणा उसके बातों से प्रभावित हो जाती है।जशोदा वीणा के पास से अपने मजदूरी के पैसे लेकर अपने पति को शराब के लिए इंतजाम करती है।जसोदा इतनी भोली-भाली है कि वह अपने पति के प्यार को पाने के लिए उसके हर जुल्म को जीवन भर बर्दाश कर रही है।जसोदा को उसके पति का पूरा प्यार तो मिला है।जसोदा अपने मेहनत से,अपने संघर्ष से अपने पति को अपना बना लिया था।वीणा इस बात पर बहुत सोचती है।पवन के हरकतों से वीणा तंग आ जाती है।वह एक नहीं अनेक औरतों के साथ मस्ती करता है।वह अपने सहकर्मी पायल के साथ भी रहता है।कभी-कभी अनामिका के साथ भी घूमता-फिरता है।पायल अपने पति पर नाखुश है।वह अनचाहे हरकतें करता है।यह सब सहकर वीणा परेशान हो जाती है।वह स्वयं एक अपने बचपन का सहपाठी किशोर के पास चली जाती है।किशोर भी वीणा को बहुत चाहता था।वह किशोर से मिलने गई वह उसकी मुलाकत एक बडे से अलिशान होटल में करवाता है।वह अपने प्रेम का इजहार तो करना चाहती थी।अपने प्रेम की भूख को मिटाना चाहती थी।मिटा न सकी।लेखिका ने इसका चित्रण वीणा और पवन के माध्यम से व्यक्त किया है।तृष्णा-लेखिका जेबा रशीद ने'तृष्णा'कहानी के माध्यम एक औरत की'प्यास'क्या होती है।इसका चित्रण इस कहानी में किया है।इस कहानी की नायिका'तराना'है।वह पढ़ी-लिखी,सुसंस्कृत स्त्री है।वह अपने हालातों से मजबूर है।वह रेडियो स्टेशन पर गाने गाती थी।वह एक समय में बहुत मशहूर गायिका थी।तराना अमीर पिता की इकलौती बेटी थी।उसके जीवन में आर्थिक तंगी कभी नहीं आयी थी।तराना की जैसी-जैसी उम्र होते गई वैसे रेडियो स्टेशन पर कोई काम नहीं दे रहा था।उस समय अनिल ने अपने मित्र से कहा तेरे नाटक में किसी बुढ़िया की आवाजे की जरूरत हो तो बता देना।एक दिन अनिल तराना के घर गया।तराना के घर जाने के बाद उसके पास कुछ न होने के कारण वह पड़ोसियों से सभी मांग-मांगकर अनिल की मेहमान नवाजी की।अनिल आस-पडोंसवाली व्यंग्यभरी बातें सुन रहा था।अनेक औरत तराना को ताने मार रहे थे।तराना अपने गजलों के बारे में अनिल से पूछ रही थी।अपने मेरी गजले

सुनी है।अनिल उनकी हालत और परेशानी कों देखकर सभी हा में हां मिलते जा रहा था।तराना बाताते समय भावुक हो रही थी।लेखिका लिखती,"हम पुरानी आर्टिस्ट अच्छे चांस के पास पहुंचते-पहुंचते हार जाते हैं।फिर गरीबी की चक्की में पिसती है।होंठ लाल करने के लिए भी दो जोडी रुपये नहीं जुटा पाते।"वह अपने हालत पर बता रही थी।तराना बताना चाहती है कि कलाकार की उम्र होने के बाद उसे कोई पूछता नहीं। उसको किस बात की परेशान आ गई यह भी कोई देखता नहीं।तराना के ऐसी बातों से अनिल उदास हो गया।वे एकदम से उनको कहा कि मैं तुम्हारे लिए एक ऑफर ले आया हूँ।उस समय तराना ऐसी चौंक गई कि खुशियों की हद पार हो गई।वह अपने आप को संभल नहीं पायी।तराना के खुशी के मारे वह मर गई।लेखिका बताना चाहती है कि अपने काम के लिए तरसनेवाली तराना काम मिलने की खुशी में अपनी जान गवा बैठी।एक कलाकार सारी उम्र अपनी कला प्रदर्शित करने के लिए कितनी राह देखता है।तराना गायिका के माध्यम से लेखिका ने व्यक्त किया है।अनारकली-जेबा रशीद ने'तपती रेत' कहानी आधुनिक युग में चल रहे प्रेम विवाह पर प्रश्न चिन्ह लगाया है।मृदुल अपने ही पड़ोसी चंदनसिंह से प्यार करती है।चंदनसिंह बहुत ही अमीर परिवार का लड़का है।मृदुल चंदन को बहुत प्यार करती है।वह भी उसे प्यार और शादी के सपने दिखाता है।एक दिन दोनों मिलकर तय करते हैं कि वह घर से भाग कर शादी करेंगे।दोनों ने अपने परिवार वालों को बिना बताए में बीना बताये शिमला जाते हैं।मृदुल और चंदन दोनों एक दूसरे के बहुत ही करीब आते वे मृदुल को प्यार से अनारकली नाम से पुकारता है।लेखिका लिखती है,"अनार हमें यहां कोई पहचान लेगा।शाम की गाड़ी से हम नैतीताल चल रहे हैं...अब शादी वही होगी।"चंदन सिंह अपने प्रेमिका को शिमला से नैनीताल के रेल में उसे अकेले छोड़कर चला जाता है।चंदन ने मृदुल को कोई नशा की दवा उसे चाय में मिलाकर पिलाता है।मृदुल को नींद में कुछ समझ में न आया।मृदुल को जब होश आया तो वहां चंदन नहीं था।उसे रेल के सफर के दौरान डॉक्टर नीला से पहचान हो जाती है।डॉ नीला अन्नारों की तकलीफ उसके बेबस नजरों से पहचान लेती है।वह अन्नारों को अपने साथ ले जाती है।अन्नारों नाम से मृदुल का नया जीवन प्रयास डॉक्टर नीला के पास से शुरू हो जाता है।अन्नारों अपने किये पर भी बहुत पछताते हैं।लेखिका लिखती है,"नारी का शत्रु कभी समाज,होता है कभी प्रेमी।लेकिन सबसे बड़ा शत्रु होता है उसका प्रेम।"अन्नारों डॉ. नीला को अपना सबकुछ बताती है।वह घर भी नहीं जाना चाहती।अन्नारों के शब्दों में लेखिका लिखती है,"दीदी,अब मैं घर नहीं जा सकती।देवतुल्यपिता की इज्जत को पैरोंतले रौंदकर आई हूं।"

अन्नारों डॉ.नीला के पास दायी का काम करने लगी।अन्नारो को वहां के लोग भी ताने मारते।डॉ.नीला की भी मृत्यु हो जाती है।अनारो मजबुरी में जागीरदार के कहने पर उसके साथ नाजायज रिश्ते में बिंदी रहती है।जागीरदार को अनारो अच्छी तरह से समझती थी।जागीरदार ने अपने अमीरी के बलबुते पर किसी सौंदर्यावती से शादी की दो दिन के बाद वह उसे तलाक देने की बात कर रहा था।वह औरत जागीरदार पर भड़क उठ रही थी।सभी को चिल्ला कर बताने की कोशिश कर रही थी।अनारो को अपने पर बीते बातों का एहसास होने लेखिका ने अनारों के माध्यम से आधुनिक युग में प्रेम के पीछे भागने वाली लड़कियों को समझाने का प्रयास किया है।अनारों के माध्यम से समाज की वास्तविकता को दर्शाया है।सायबान-जेबा रशीद ने 'सायबान'इस कहानी में परिवार में बुजर्गों का रहना कितना आवश्यक हैं।यह मनोरंजनपूर्ण रूप में बताया है।इस कहानी की नायिका सुगराबानो है।वह उम्र में बड़ी है।अपने पसंद से बेटे वसीम की शादी वह समीरा से करती।सुगराबानो घर की मुखिया है।अपने बेटे के खातिर वह बेवा जीवन जैसे-वैसे बीता रही है।हर दम वसीम की फिक्र करती रहती है।सुगराबानो समीरा सासूमाँ हैं।वह समीरा को रोज उठते-बैठते ताने मारती है।लेखिका लिखती है,"यहाँ पंखा क्यों चल रहा है?कमरे में कोई नही है तो लाइट क्यों जलती छोड़ दी।टी.वी चलेगा,पंखा चलेगा,कपडे मशीन से धुलेंगे।यहाँ तक की चटनी,मसाला भी बिजली खर्च करके ही पीस जायेंगे।हजारों का बील आता है।यहाँ किसे परवाह।"समीना का बहुत बुरा लगता था। एक दिन सुगराबानों किसी को भी शिकायत न करते हुए अल्ला की प्यारी हो गई।समीरा को बाद में अपने सास के मृत्यु पर बहुत दुख होने लगा।समीरा को अपने सासू माँ की हर बात याद आने लगी।सुगराबानों के मृत्यू के बाद घर में सूनापन छा गया था।समीरा को हर काम में दिक्कत आने लगी।समीरा अल्लाह से पूछ रही थी कि मेरे आम्मा को तुमने मौत की सजा क्यों दी?लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से बुड़े बजरुगों की अहमियत बताने का भरसक प्रयास किया है।आधुनिक समाज में बड़ों का मान-सम्मान करना इस कहानी के माध्यम से सीख सकते हैं

।बरसात मै-लेखिका जेबा रशीद ने इस 'बरसात मै' कहानी में सरला और पूनाराम के माध्यम से एक घर की समस्याएँ और बड़े बुजर्गो का महत्व बताया है।सरला के सास को भूक जल्द लगती थी।वह बच्चों का बहाना बनाकर सरला पर गुस्सा निकालती थी।सराला यह सब जानती है।पुनाराम सबकुछ जानता है पर चुपचाप रहता है।वह अपने माँ को कुछ नहीं बाताता।वह अपने बीवी पर तरस खाता था।वह मन ही मन सरला के बारे में सोचते रहता कितना मुश्किल से घर की गाडी चलाती है।बेचारी रात दिन घर की चक्की में पिसती है।इसका क्या कसूर।पूनाराम अपने कमाई पर अफसोस जता रहा है।अपने माँ पर ही उसे गुस्सा आता है।पुनाराम सरला को बहुत सारा प्यार जताता है।सरला अपने पति के प्यार में डुब गई थी।मैला आंचल - जेबा रशीद ने मैला आंचल इस कहानी में चौका-बर्तन करनेवाली औरत की समस्याओं को व्यक्त की है।इस कहानी की नायिका मुनिया है।मुनिया हालत से बहुत गरीब है।उसका पति मोहन शराबी है।मुनिया अपने घर के खर्चे चलाने

के लिए घर-घर जाकर घरकाम करती है।मुनिया सहज स्वभाववाली,मेहनत करनेवाली,सब बातों की खबर रखनेवाली,सबके साथ मिल जुलकर रहनेवाली है।अनेक घरों में मुनिया पर मालकिन औरतें गुस्सा करती थी।कभी-कभी चिल्लाकर डाँटती थी।उस घर के पुरुष लोग मुनिया पर तरस खाते थे।मुनिया इन सभी बातों को नजरंदाज करके अपना काम न छुटे इसलिए मुस्कुराकर काम करती रहती थी।मुनिया हालत से गरीब है लेकिन चरित्र से नहीं।लेखिका लिखती है,"शर्म आनी चाहिए आपको।मैं बडे भाई की तरह सम्मान करती हूँमैं यहाँ काम करने आती हूँ इज्जत बेचने नहीं।"वह घर जाने के बाद मोहन को बताना जरूरी नहीं समझती।मोहन भी अपनी पत्नी अच्छे तरह से पेश न आने का कारण पूछता है।वह नहीं बता रही थी लेकिन वह जिद पर अड़ गया था।मुनिया अपने पति के बातों से तंग आकर रामबाबू के बारे में आखिर बता ही देती है।मोहन शराब के नशे में मुनिया पर शक करने लगा।उसने मुनिया को सुझाव देने लगा।उसको थप्पड नही मारने का कारण पूछने लगा।लेखिका लिखती है,"तेरे दिल में क्यो नहीं आया कि उसे जुते मारूँ...तेरे दिल में बुराई नही है तो उसे जुता मारकर आ---"इस बात से नशे में तर मोहन मुनिया को जुते से मारने लगा।वह अपने आप को बचाने के लिए भागने लगी।मुनिया को बहुत गुस्सा आने लगा।वह उसी गुस्से में रामबाबू के घर गई।उसे गुस्से से जुते मारने लगी।रामबाबू के मित्र और पड़ोसी वहाँ आ गये थे।सबने अपनी-अपनी राय रखी।एक ने कहा मुनिया ने चोरी की है।पुलिस में भेज दो।मुनिया चोरी,पुलिस ऐसे शब्द सुनकर घबरा गई।घबराकर जोर-जोर से रोने लगी।लेखिका लिखती है,"हम गरीब लोग,मजबूर लोग कितने लाचार और बेबस है।"रामबाबू पुलिस को लेकर मुनिया के घर आते है।वे पुलिस से कहते है कि शाम तक चोरी की हुई पैसे वापस कर देने को कहता है।लेखिका ने ।बावरा मन - लेखिका जेबा रशीद ने 'बावरा मन' इस कहानी में साठ साल का आदमी भी अकेली औरत को देखकर किस प्रकार की हरकतें करता है।इस बात को केंद्र में रखकर लेखिका ने यह कहानी लिखी है।इस कहानी की नायिका सोनकी है।सोनकी के पति का नाम घीसू है।पति और पत्नी दोनों भी बराबरी की मेहनत करते हैं।सोनकी की कमाई भी अच्छी हो गई लेकिन घर जाने के लिए देर हो गई।वह आगे पीछे देखे रास्ता काटने लगी।सोनकी को रास्ते में अपने ही गांव के गोपालदास दिखाई देते हैं।वह उनकी आवाज से पहचान लेती है।गोपालदास साठ साल के है।सोनकी उन्हें देखकर खुश हो गई।उसके दिल में डर था अंधेरे में अकेली कैसे जाए।

गोपालदास ने सोनकी को चांद के उजयाले मैं देख रहा था।वह एक बार चांद को देखा एक बार सोनकी को।सोनकी उसकी अजीब हरकतो से परेशान हो गई।वह मजाकिया बातें करने लगा।सोनकी उसके से तेज रफ्तार से आगे चलने।वह तिरछी नजरों से सोनकी के सौंदर्य को निहारता रहा।लेखिका लिखती है,"पुरुष जिस बात की कोशिश करके भी नहीं जान सकता वही बात औरत एक निगाह में समझकर ही भांप लेती है।"..."तेरी कोमल कालिया और उंगलियां मजदूरी करने के लिए नही है।"सोनकी गुस्से में आकर घीसू और गांव वालों को बतानेकी धमकी देती है।गोपालदास अपने इज्जत को डरकर सोनकी से माफी मांगता है।पैर पड़ने लगता है।लेखिका लिखती है।सोनकी ने बावरा मन के गोपालदास को माफ कर देती है।लेखिका ने सोनकी के माध्यम से एक स्त्री का मन कितनी दरिया दिली होता है यह बताया है।लेखिका ने 'बावरा मन' कहानी के माध्यम से स्त्री जाति को ही सजग किया है।अनाम रिश्ते - इस कहानी में लेखिका ने दो अंतर्जातीय परिवार का सहसंबंध व्यक्त किया है।वसीम और सना पति-पत्नी है।सुनील और मीना पति-पत्नी है।वसीम और सुनील एक ही कार्यालय में नौकरी करते हैं।मीना अध्यापिका है।सना गृहिणी है।वसीम को मीना का सहज,सरल, निस्वार्थ स्वभाव,विनम्रता पूर्ण रहन-सहन बहुत अच्छा लगता है।वसीम मीना से बहुत प्रभावित हो जाता है।उसकी हर आदत वसीम को अच्छी लगती है।वसीम और मीना में एक निस्वार्थपूर्ण, प्रेमपरक,निर्वासनात्मक रिश्ता बनता है।उन दोनों के संबंधों को देखकर सना और पड़ोसवाले उन पर शक करते हैं।उनके दोनों के प्यार में शारीरिक वासना न के बराबर होती है।लेखिका लिखते हैं,"हमारी दोस्ती--हमारे स्नेह को लोग इन नजरों से क्यों देखते हैं?हम दोनों ही शादीशुदा हैं---समझदार हैं---परिपक्व हैं।"वसीम के दिमाग में तो मीना को लेकर गलत विचार कभी नहीं आये।लेखिका कहना चाहते हैं कि समाज में ऐसे अनेक अनाम रिश्ते होते हैं।जो हमारे जीवन में ऐसे ही जुड़ जाते उनमें एक पवित्र अनाम रिश्ता होता हैं।'एक प्रश्न'-लेखिका जेबा रशीद में एक प्रश्न इस कहानी में एक लड़की के मन में उठे सवाल का वर्णन किया है।इस कहानी की नायिका कुमुद है।कुमुद एक रेल स्टेशन पर देर रात उतर गई थी।वहाँ प्रमोद नामक एक व्यक्ति से कुमुद की बात होती है।कुमुद वहां से अपने गांव जाने का साधन ढूंढ रही थी।रात हो गई थी इसलिए कुमुद न गांव जा सकती थी न ही रेल स्टेशन पर रुकने की कोई सुविधा न थी।प्रमोद ने अपनी गाड़ी पर कुमुद को लेकर उसके साथ अपने घर पहुंचता है।इस समय प्रमोद की पत्नी सरिता ने कुमुद के बारे में पूछताछ करके उसके साथ प्रेमपूर्वक बर्ताव करती है।कुमुद ने प्रमोद के साथ आने की मजबूरी बताती है।एक लड़की अनजान पुरुष के साथ देर रात घर आती है तो उसे समय प्रमोद की पत्नी सरिता चुपचाप से कुमुद को अपना लेती है।कुमुद के दिल में एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या एक औरत एक अनजान को देर रात लाती है तो क्या पुरुष इस बात को स्वीकार लगा? इस प्रश्न से प्रमोद हड़बड़ा जाता है।अस्मिता के लिए-लेखिका जेबा रशीद ने'अस्मिता के लिए'यह कहानी में दो स्त्रियों की व्यथा व्यक्त की है।समीर इस कहानी का नायक है।सुरैया और नूरी इस कहानी में नायिका की भूमिका निभा रहे।सुरैया

और नूरी दोनों भारतीय है।लेखिका ने सुरैया को भारतीय परिवेश में चित्रित किया है और नूरी को विदेशी परिवेश में।समीर की शादी उसके माता-पिता के मनमर्जी के अनुसार हो गई थी।समीर और सुरैया के बीच पती-पत्नी का संबंध है।समीर अपनी बीबी को चाहता नही था।

समीर को भारत में काम न मिलने के कारण वह सौदी जाता है।सुरैया अपने सास-ससुर के पास रहती है।समीर को सौदी में एक दुकान में नौकरी मिल जाती है।समीर की और नूरी की विदेश में एक दुकान पर मुलाकत हो जाती है।समीर को नूरी अच्छी लगती है।वह नूरी से शादी करना चाहता है।नूरी की कहानी अलग है।नूरी एक सोदी के उम्र में बड़े आदमी के साथ शादी की हुई औरत है।नूरी के माता-पिता ने पचास हजार में नूरी को इस सौदी में रहनेवाले बुढें से शादी करके सौदी भेज दिये थे।सौदी में आने के बाद नूरी को सबकुछ पता चला।सौदीयन के दो शादियों हो गई थी।घर में नौकरानी जरूरत थी तो नूरी से शादी कर ली थी।नूरी अपनी कहानी समीर के सामने बताती है।फिर भी समीर सारी बातों को अपनाकर नूरी से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है।नूरी भी बहुत होशीयार थी।उन्होंने समीर से एक शर्त पर शादी करने के लिए राजी तैयार होती है।नूरी के शर्त को लेखिका लिखती है,"अपना बनाना चाहते हो।मेंरी दोस्ती की एक शर्त है।तुम्हें कभी वापस देश जाने नही दूँगी।... तो घर सूचना भेज दो कि तुम अल्लाह को प्यार हो गये।"शादी के कई दिनों के बाद समीर और नूरी मे अनबन होने लगी।नूरी बहुत ही अय्याशी करनेवाली औरत थी।समीर को हर बात पर टोकने लगी।अपना देश,अपना परिवार,माता-पिता,पत्नी सब याद आने लगे थे।वह नूरी को बीना बताये चुपचाप से भारत आ गया।वह जब घर आया तब का समय आधी रात का था।समीर ने कई वर्षों के बाद घर आया था।इधर परिवारवालों को खबर मिली थी कि समीर मर चुका है।

सुरैया आधी रात में आवाज सुनकर दरवाजा खोली तो सामने समीर था।सुरैया घबरा गई।समीर के गले लग गई।सुरैया का जीवन अब काफी बदल चुका था।समीर की मृत्यु की खबर सुनकर उसके माता-पिता गुजर चुके थे।समीर जैसे घर में कदम रखा तो वहाँ का सब नजारा बदला हुआ था।समीर ने अपने घर में एक परपुरुष को देखा तो बहुत गुस्सा हुआ।सुरैया और पड़ोसवालों ने समीर को सबकुछ सच्चाई बताई दी।सुरयै ने अनिक के साथ शादी कर ली थी।अनिक शर्म के मारे कुछ न कहा।समीर यह सबकुछ देखकर चुपचाप ख़ामोश बैठ गया।समीर और अनिक में बातचीत होने लगी।वे दोनों सुरैया अब किसके पास रहेगी इसपर बहस करने लगे।अनिक समझदार था।वह सुरैया की राय जानना चाहता था।समीर सुरैया के साथ बहुत झगडने लगा।यह बात सब तरफ फैले गई।रिश्तेदारों को मालूम हो गया।समीर सुरैया को गलत ठहराने लगा।उसकी मजबूरी पर बातें सुनाने लगा।सुरैया को बहुत अफसोस होने लगा था।लेखिका लिखती है,"मेरे पास कोई चारा भी तो नहीं था...मैं अकेली क्या करती...सूचना भी तो ऐसी आई थी"सुरैया को समीर छोड़कर जाने के बाद अनिक ने उसे अपना लिया था।सुरैया पर अनिक के बहुत एहसान थे।बहुत बुरे समय में वह उसका साथ दिया था।अनिक को सच्चाई समझ में आने के बाद वह सुरैया का घर छोड़कर चला जाता है।वह अनिक के लिए तड़पने लगती है।समीर सुरैया को दिन-ब-दिन तकलीफें देता रहता है।समीर सुरैया को चली जा... चली जा मेरे घर में से कहता है।सुरैया इन बातों से सहम जाती है।डर जाती है।सुरैया अंत में अपना निर्णय सुना देती है।लेखिका लिखती है,"मैं इस तरह नहीं रह सकती।न तुम्हारे पास न उसके पास।वह उठ खड़ी हुई।नई जिंदगी की शुरुवात करने के लिए नई राह पर।"लेखिका ने इस कहानी में सुरैया के माध्यम से नारी मन को व्यक्त किया है।आज की आधुनिक नारी अपने निर्णय परिस्थिती के अनुसार लेने के बावजूद भी पुरुष नारी पर ही गलती लगाते है।वह कमजोर है समझकर उस पर जुल्म करता है।आज की नारी भी बहुत सह रही है।जब उसकी सहने की क्षमता खत्म होती है।तो अपना निर्णय लेकर जीना चाहती है।यह विचार लेखिकाने इस कहानी में व्यक्त किया है।उसके खातिर-जेबा रशीद ने'उसके खातिर'इस कहानी में एक वाक्य से पति-पत्नी का रिश्ता खराब होता हैं।इस कहानी में नीला बहुत खूबसूरत,सुशील,संस्कारशील लड़की थी।ओवेस जब नीला को देखा तो उसकी सुंदरता पर पागल हो गया था।ओवेस और नीला की शादी बहुत खुशियों के साथ हो गई थी।नीला शादी के बाद अपने मायके गई।वहां भी खुशियों का माहौल था।ओवेस अपने पत्नी को लेने ससुराल चला गया।ओवेस नीला को मिलने बेताब था।नीला अपने परिवार वालों के सामने शर्मा रही थी।वह डर-डर के ही ओवेस को बात कर रही थी।नीला की सहेलियां भी ओवेस को मजाक मस्ती से बात कर रहे थे।

नीला की सुंदरता पर बढ़-चढ़कर बातें हो रही थी।लेखिका लिखती है,"सुंदर पत्नियों के पति को उनके गुलाम बनकर रहना होता है।"इस बात से ओवेस नाराज होता है।यह बात उसकी दिल को लग रही थी।वह नीला को लेकर अपने घर जाता है।घर में मां भी नहीं थी।ओवेस की मां उसके छोटे बेटे के पास चली गई थी।ओवेस और नीला दोनों ही घर में थे।ओवेस ने नीला के सजने सवरने पर पाबंदी लगाई थी।लेखिका लिखती है,"केवल खूबसूरती से घर नहीं चलता मैडम।" ओवेस की हर पल हरमांग नीला पूरी करती थी।ओवेस नीला की कमजोरी देखकर बार-बार गलतियां निकालता।नीला सोचती थी कि मुझे देखकर इतना खुश होने वाला ओवेस दिन-ब-दिन ऐसे क्यों हो रहा है।ओवैस को लगता था की लीला को अपने सुंदरता पर बहुत अहम हैं।वह उसे चाह कर भी नफरत भरी बातें करता था।लेखिका लिखती है,"आज घर की सफाई ढंग से नहीं की।...बस सजने संवरने के अलावा तुम्हें कोई काम नहीं आता।...मेरा बटन टूट गया लगा नहीं सकती थी...मेरे जूते की पॉलिश अच्छी नहीं की...पोलिश जमकर करने में तुम्हारी खूबसूरत हाथ जो घिस जाते।...सब्जी में नमक मिर्च सही नहीं

डाल सकती..तुम्हारा ध्यान शीशे पर नहीं किचन में रहना चाहिए।"ओवेस नीला को बातों ही बातों से तंग करता था।ऐसे ही दिन गुजर गए।नीला मां बन गई।ओवेस नीला के सुंदरता पर नफरत करता था।नीला एक बच्चे की मां बनने के बाद उसके सौंदर्य और बढ़ गया।

ओवेस के घर आने वाले सभी दोस्त नील की तारीफ करते थे।ओवेस को नीला की तारीफ नहीं देखी जाती थी।वह दिन-ब-दिन नीला पर चीढ़ जाता था।एक दिन नीला का भी सब्र खत्म हो गया था।नीला ने भी ओवेस के साथ चिल्ला कर बात करने बाद ओवेस बहुत चीड़ गया।दोनों में झगड़ा हो गया ओवेस ने नीला को तलाक देकर मायके भेज दिया।लेखिका लिखती है,"तीन बार तलाक के शब्दों का पुलिंदा थमकर ओवेस उसको पीहर पहुंचा गया।"नीला अपने मायके जाकर सोचते-सोचते बीमार हो गई।वह पागलों की तरह करने लगी।लीला के माता-पिता ने डॉक्टर नफीस से इलाज करवाया।डॉक्टर नफीस ने नीला की दिल की बीमारी ठीक कर दी।नीला करीबन एक साल भर तक बीमार थी।वह नीला को बेटी कोमल की जिंदगी के बारे में बात-बता कर ओवेस उसे ठीक करने की कोशिश करता था।नीला ने डॉक्टर नफीस के दवाओं और आशापूर्ण बातों से ओवेस को भूलने का प्रयास कर रही थी।नफीस ने नीला की सेहत अच्छी रहेगी कहकर कभी घूमने के लिए ले जाता था।डॉक्टर नफीस ने नीला की बहुत ही ज्यादा हिफाजत करने लगा था।नीला की मां को लग रहा था कि डॉक्टर नफीस अच्छा है।नीला के साथ शादी भी करता है तो कोई हर्ज नहीं।नीला और नफीस की नजदीकियां बढ़ने लगी थी।नीला डॉक्टर नफीस को एक अच्छा दोस्त समझती थी।डॉ नफीस नीला को जाने लगा था।नील की सादगी उसे प्यार करने के लिए मजबूर कर दी थी।वह नीला को बहुत मन से चाहने लगा था।नफीस ने अपने दिल की बात नीला को बता दी।लेखिका लिखती है,"तुम पहली लड़की हो जो मुझे अच्छे लगने लगी हो।तुम्हारी सादगी को मैंने पसंद किया है।मैं तुमसे मोहब्बत करने लगा हूं।"नीला ने नफीस के बातों से परेशान हो गई।उसे पुरुष जाति पर नफरत होने लगी थी।वह ओवेस को दिल से चाहती थी।उसे नीला ने अपना बना लिया था।नीला को नफीस के शब्द चुभने लगे थे।नीला की मां घर पर नहीं थी।उस दिन ओवस ने नीला के पास आया।नीला अपने पति को देखकर मन में खुश हो गई लेकिन उसके जहरीले बातों को याद करके तिलमला उठी।ओवेस अपनी बेटी को मिलने का बहाना बताता है।वह अपने किए पर पछताते हैं।नीला से माफी मांगता है।वह नीला को वापस घर चलने के लिए कहता है।नीला तलाक के बाद पति के पास रीति रिवाज के बिना कैसे जा सकती है।उसे डॉक्टर नफीस के बात याद आती है।वह अपने दिल की बात नफीस के सामने रखती है।नफीस नीला के बात से नाराज होता है।वह नीला को बताता है कि मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा।नीला नफीस के सामने एक शर्त रखती है।लेखिका लिखती है,"मेरी एक शर्त होगी मुझे दो दिन में तलाक देनी होगी।"नीला के हर बात को नफीस अच्छे तरह से समझता है।नफीस के मन में भी नीला ही बस गई थी।वह नीला से कहता है ओवेस हलाला सहन कर पाएगा।नीला को दो पुरुषों के प्यार ने बिल्कुल पागल कर दिया था।नफीस के बातों पर नीला को शक होने लगा था।वह उसे कभी फरिश्ते के रूप में देखता तो कभी शैतान के रूप में।

नीला ने ओवेस के साथ शादी की बाद में तलाक हो गया बाद में नफीस के शादी और तलाक फिर अंत में वह ओवेस के साथ रह सकती है।यह सब सोचते-सोचते नीला को ओवेस की बात याद आ गई।लेखिका लिखती है,"किसी से शादी...क्या यह सच ओवेस सह पाएगा?कोई मुझ पर नजर डालें इतनी सी बात सह नहीं सकने वाला कैसे सहन कर पाएगा कि किसी ने मुझे छुआ है....किसी के साथ में रहकर आई हूं।"नीला दोनों के बारे में सोच रही थी।वह रात भर सोई नहीं।वह कभी नफीस के बारे में सोचती कभी ओवेस के बारे में।नीला को नफीस बहुत प्रेम करता है लेकिन वह ओवेस की अमानत है।नीला का शरीर ओवेस का है और दिल नफीस का इसी चक्कर में वह स्वयं को मिटा देती है।ओवैस नीला की सुंदरता पर मर मिटता था तो नफीस उसके रहन-सहन पर मरता था।दोनों के प्यार के रास्ते अलग थे लेकिन मंजिल नीला थी।वे दोनों ने भी उस मंजिल को पाने में नाकामयाब हो गए।लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से एक स्त्री का चरित्र कितना खरा रहता है।अपने पति के लिए यह दर्शाने का प्रयास किया है।पुरुष स्त्री के दिल को न पढ़कर उसके शरीर एवं स्वभाव पर मर मिटते हैं।लेखिका ने पुरुष जाति को इस कहानी के माध्यम से सलाह देती है कि नारी के मन को पढ़ो और उसको अपना लो।दर्द का रिश्ता-लेखिका जेबा राशिद ने 'दर्द का रिश्ता इस कहानी में नायिका नूरी और नायक साहिम दोनों दुखी है।नूरी के घर में कोई पुरुष नहीं है।नूरी की मां बानो और उसकी बेवा बुवा और नूरी इतने ही लोग घर में रहते हैं।नूरी के घर में कोई कामाने वाले नहीं है।नुरी ने अपनी आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण कॉलेज में जाना छोड़ दी थी।बानु घर गृहस्ती चलाने के लिए अपने घर का ऊपर का कमरा किराए पर देना का सोचती है ताकि घर के खर्चे उससे चले।उस कमरे में बुआ जी तहमीना के देवर का बेटा साहिम रहने लगा था।वह विदेश से वापस आ गया था।साहीम की बीवी मोना उसे तालाके दी थी इसीलिए साहिम अकेला रहता था।वह पढ़ा लिखा समझदार लड़का था।वह सुबह जल्दी कमरे से बाहर जाता और देर रात घर आता।

साहीम गलीमोहल्ले में किसी के साथ बात नही करता था।बानु को गली की औरतें नाम रखने लगी।लेखिका लिखती है,"देखो बानू मैं तुम्हारे अच्छे के लिए ही कह रही हूं।घर में जवान बेटी बैठी कल को कोई उच्च नीच हो गई तो बदनामी हो जाएगी।किराएदार को जल्द से जल्द दफा करो।" बानू गली की औरतों की जुबान से ऐसी बातें सुनकर तंग आ गई थी।बानु के पड़ोसी में नूरी

को लेकर बातें होने लगी थी।लेखिका लिखती है,"दिन-ब-दिन अब तो नूरी को देखो निखर रही है,हां क्यों नहीं मैं खुद इसको फैमिली प्लानिंग की गोलियां खरीदते देखा है।"सब्बो सायरा नजमा अनिमा फातमा आदि औरतें ऐसी बातें करती थी।गली के सभी औरतें नूरी को शक के निगाहों से देखते थे।साहिम दिनभर कमरे में नहीं रहता था।नूरी अपने दिन भर के काम में ऊपर का कमरा भी साफ कर लेती थी।नूरी पढ़ी लिखी थी।वह कैमरा साफ करते-करते साहिम के कई पत्रिकाओं को तथा उपन्यासों को दिखा था।उसे जो अच्छे लगे वह लेकर नूरी नीचे आ गई।नूरी को उन पत्रिकाओं से बहुत प्यार हो गया।उसमें की हर बात नूरी को अच्छी लगे।नूरी ने सोचा पत्रिकाओं में इतनी अच्छे विचार व्यक्त हो गए हैं।इन पत्रिकाओं को पढ़ने वाला कितना अच्छा होगा।नूरी रात भर उन पत्रिकाओं को निहारती रही।कभी-कभी वह अपने आप को कुश्ती भी रही।नूरी की चचेरी बहन रफिया ने साहिम के बारे में बहुत सारी बातें बताई थी।राफिया ने साहिम को शराब और आवारा कहकर उसकी बदनामी की।नूरी को रफिया की बातें भी याद आ गई।नूरी रात भर रफिया के बातों को भी याद करने लगी।नूरी ने दूसरे दिन साहीम को देखने के लिए मां और बुआ को नींद लगने पर साहीम को देखने के लिए जाती है।साहिम चुपचाप किताब पढ़ता हुआ बिस्तर पर लेटा हुआ है।साहीम अपने बाजू में गिलास भी रखा था।नूरी को लगा कि यह जो बाजू में रखा है वह बिल्कुल शराब का ग्लास है।नूरी देरतक साहीम को दरवाजे के पट में से देखती रही।साहिम को लगा कि उसे कोई देख रहा है।साहिम दरवाजे के पास आते ही नूरी भागते हुए नीचे आ गई।वह बिस्तर पर लेटी साहिम के बारे में सोचने लगी।रफिया ने मुझे साहिम के बारे में झूठा बताया है।उस दिन उसे रात को नींद नहीं आ रही थी।वह साहिम के पास जाने का और साहस की।उसने दरवाजे से और एक बार देखा वह पलंग पर बैठा कोकोकोला पी रहा था।नूरी ने सोच लिया कि उसके हाथ में गिलास है वह जरूर शराब पी रहा होगा।वह पकड़ा गया राफिया की बात सच लगी वह उसके पास चली गई।नूरी ने साहिम को सवाल करने लगी।साहिम नूरी को देखकर कहने लगा इतनी रात को यहां क्यों आई हो? नूरी जाने का नाम नहीं ले रही थी।लेखिका लिखती है,"नहीं जाती आपको शराब पीते देख लिया इसीलिए भगा रहे हो।पता है आप शराब पीते हुए बुरे आदमी लग रहे हो।"साहिम नूरी की बातें सुनकर चौंक गया।दोनों में शरारत भरी बातें हो गई।नूरी ने साहिम की सब गलतियां बता दी।नूरी बातों ही बातों में साहिम को शराबी,घमंडी,आवरा कह दिया।साहिम को रफिया पर गुस्सा आ गया।वह नूरी पर नाराज हो गया था।साहिम के गुस्से वाले बर्ताव से नूरी चली गई।लेखिका लिखती है,"हां जा रही हूं देखा सच सुनते ही नाराज हो गए लेकिन मैं आपको सुधार कर ही दम लूंगी" राफिया के घर वाले रफिया की शादी साहिम से करवाना चाहते थे।साहिम औरत जात से ही नफरत करता था।साहिम को उसकी बीवी मोना उसे तलाक देकर चली गई थी।उसके बाद वह कई दिनों तक दुबई चला गया था।नूरी को इधर शादी के लिए रिश्ते नहीं हो रहा था।उसकी मां और बुआ ने नूरी के लिए लड़का देख रहे थे।साहिम बीमार होने के बाद नूरी उसके लिए चाय बनाकर साहिम को देने चली गई थी।इस समय सब्जी जी के ठेले पर ठहरी औरतें नूरी के बारे में गलत बातें कर रही थी।बानु ने सभी बातें सुनने के बाद नूरी को अंदर बुलाकर मारने लगी।नूरी चिल्लाने लगी।कहने लगी मेरा क्या कसूर है।मां ने नूरी को मारने के साथ-साथ गालियां भी देने लगी।इन दोनों की आवाज सुनकर साहिम नीचे नूरी के पास आ गया।साहिम ने बानू से पूछने लगा नूरी को क्यों मार रहे हैं।बानु चुपचाप से खड़ी थी।नूरी के शब्दों में लेखिका लिखती है,"पूछ लो न इनसे कब इनसे मोहब्बत करने लगी या कब इनसे शादी करना चाहा मुझ पर इल्जाम लगाते हैं तो शादी कर लूंगी इससे क्या कर लेंगे मोहल्ले वाले मैं तो चाहती हूं यह इज्जत की जिंदगी जिए आवारा ना करें"नूरी के इन बातों से साहिम समझ गया।नूरी की सच्चाई उसकी तड़प देखकर साहिम का दिल हिल गया।साहिम ने सभी की गलतफहमी दूर की।साहिम ने नूरी की सच्चाई की तारीफ करते-करते थक नहीं गया।बानू भी अपनी बेटी को बेकसूर कहकर नूरी की शादी साहीम के साथ करने के लिए तैयार हो गई।लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से बेकसूर नूरी जैसे लड़कियों हैं।

संदर्भ -

१. जेबा रशीद,रिश्ते क्या कहलाते है,कहानीसंग्रह।राजस्थानी ग्रंन्थागार सोजती गेट जोधपुर,राजस्थान 2013 प्रथम संस्करण।

*****

दुष्यन्त कुमार के ग़ज़लों में यर्थाथ बोध

काजी नसरीन खमरोद्दीन
शोध निर्देशक – प्रो. डॉ सैयद शौकतअली
जयभवानी महाविद्यालय, पाटोदा - बीड

साठोत्तरी हिंदी ग़ज़लों के सर्वश्रेष्ठ गजलकार दुष्यन्त कुमार त्यागी का जन्म 27 सितंबर 1931 में उत्तर प्रदेश जिला बिजनौर के नजीबाद तहसील के नवादा नामक गॉव में हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती रामकिशोरी और पिता का नाम श्री भगवत सहाय था। पत्नी राजेश्वरी से 18 वर्ष की आयु में ही विवाह हो गया था। इनके मित्रों में कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अजितकुमार तथा रविन्द्रनाथ त्यागी थे तो अध्यापकों में डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. धीरेंद्र वर्मा और डॉ. रसाल थे। इन साहित्यकारों और आलोचकों के सहवास ने ही उन्हे सशक्त गजलकार बना दिया। अपनी एम.ए. तक की शिक्षा पूरी करने के उपरान्त वे ऑल इंडीया रेडिओं में नौकरी करने लगे। वहीं पर कई रेडिओ नाटक लिखे और प्रसारित किये। इन्होंने अपने काम सें कभी समझौता नहीं किया कारण वश कई बार सस्पेंड भी होना पड़ा। लेकिन स्वभिमान नहीं छोड़ा 29 दिसबंर 1975 को 44 वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हो गया।

दुष्यन्त कुमार ने कविता, नाटक, उपन्यास, गजल आदि साहित्यीक विधाओं पर अपनी कलम चलायी। जिसमें गजल विधा ने उन्हें प्रसिध्दी दिलाई। गजानन माधव मुक्तिबोध और बच्चन जी से वे छात्र जीवन से ही प्रभावित थे। जिस कारण साहित्य लेखन में प्रौढता आ गई थी। गजल के द्वारा लोगों के हद्रय तक पहुँचना सहज था जो उन्होंने किया। 12 वर्ष की आयू से ही उन्होंने काव्य लेखन आरंभ किया था जिसमें किसी एक वन में रहता था चतुर शिकारी एक प्रमुख है। साहित्यिक जीवन का आरंभ परदेसी से किया था। 1957 में उनका प्रथम काव्य संग्रह 'सूर्य का स्वागत' उसके बाद 1963 में 'आवाज के घेरे' 1964 में 'जलते हुए वन का वसंत' और 'छोटे छोटे सवाल' (उपन्यास) 1968 में 'ऑगन में एक वर्ष' (उपन्यास) 'एक कठं विषपायी' (नाटक) तथा 1957 में सर्वाधिक चर्चित रचना 'साये में धूप' (ग़ज़ल सग्रंह) प्रकाशित हुई। अप्रकाशित रचनाओं में 'दुहरी जिदंगी' ,'मन के कोन', 'मसीहा मर गया' तथा 'चेतन एक अध्ययन' है।

दुष्यन्त कुमार तत्कालीन समय के सिध्दहस्त कवि और ग़ज़लकार रहे हैं। उनकी अंतिम प्रकाशित रचना 'साये में धुप' एक समर्थ रचना है। जिसमें उनका द्वंद्व और विद्रोह का प्रखर रूप दिखाई देता है। तत्कालीन समाज की मोंहभ्ांग की स्थिति उनका आक्रोश, अनास्था, अशांति, विशाद आदि को उन्होंने अपने गजल में अभिव्यक्त किया। यहॉ की सामाजिक , आर्थिक स्थिति को देखकर वे द्रवित हो उठते थे। पुरा देश ही जर्जरता को अपनाए हुए था ऐसी स्थिति मे उन्हें आम आदमी या किसान की हालात में पूरा भारत दर्शन हो रहा था।

''कल नुमाईश में मिला वो चिथडे पहने हुए।
मैंने पूछा नाम तो बोला हिंदुस्तान हूँ मैं।'' 1

दुष्यन्त की ग़ज़ल में आम-आदमी की पीडा़-वेदना है, मानवी मूल्यों का ह्रास है आम आदमी की व्यथा, घुटन, छटपटाहट है। जिसे व्यक्त करते हुए वे भी वेदना - त्रासदी को महसूस करते हैं -

मुझमें रहते है करोंडों लोग चुप कैसे रहुँ।
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है। 2

ग़ज़ल को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के पीछे उनका अपना मकसद है। हिंदी ग़ज़ल को नसे मापदंड में ढालकर नसे रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। इस संबंध में उनका अपना विचार है मिर्जा गालीब ने अपनी पीडा़ की अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल का माध्यम ही क्यों चुना और ग़ज़ल के माध्यम से गालीब अपनी निजी तकलीफ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं तो मरी दोहरी तकलीफ व्यक्तिगत और सामाजिक है जिसे आसानी से पाठक वर्ग तक पहुॅचाया जा सकता है। मुझे अनुभव है कि कुछ भाव ऐसे हैं जिन्हें ग़ज़लों के अलावा अन्य काव्य माध्यम से कहा नहीं जा सकता साधारण लोगों तक पहुॅचाया नहीं जा सकता.....मैंने शौक के लिए ग़ज़ल नहीं लिखी बल्कि अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम के रूप में उसकी रचना की। ग़ज़ल का प्रभाव काव्य रसिकों तक ही प्रभावी नहीं रहता बल्कि उसका प्रचुर प्रसार - प्रचार हो सकता है और जिदंगी के सुख-दुखों को माधुर्य और मीठास के साथ आम लोंगों तक पहुॅचाया जा सकता हैं। ग़ज़ल से उनका संबंध केवल हद्रय से नहीं आत्मा से है। इंदिरा गांधी के अपरत काल में अन्य कवि डमरू के ताल पर नृत्य कर रहे थे जिसे देख दुष्यन्त बौखला उठे।

एक गुडिया की कई कठ पुतलियों में जान है।
आज शायर यह तमाशा देखकर हैरान है। 3

इंदिरा गांधी ने अपातकाल की घोषणा कर दी जिसमें दुष्यन्त के समान कवि गण इंदिरा गांधी की इस निती का विरोध करने लगे जिन्हें जेल में बंद कर दिया गया फिर वे स्वंय भूमिगत हो गये। दूसरी तरफ इंदिरा गांधी आम आदमी को सुनहरे सपने दिखा रही थी और दमनकारी निती से वह अपने विरोधियों को पस्त कर रही थी, तभी दुष्यन्त की जुबान कह उठी -

इस सिरे से उस सिरे तक रूब शरी जुर्म है,
आदमी या तो ज़मानत पर रिहा है या फरार।
रौनक ए जन्नत जरा भी मुझको रास आई नहीं,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था परवर दिगार ।। 4

आज की सडी-गली राजनैतिक व्यवस्था और दल-बदलु राजनीति के विरूध्द उनके मन में आक्रोश है। तो भोली-भाली जनता का इस्तेमाल अपने स्वार्थ के लिए करते है। इसकी प्रतिक्रिया वे अपनी ग़ज़ल में यूॅ व्यक्त करते हैं -

जिस तरह से चाहों बजाओ इस सभा में,
हम नहीं है आदमी, हम झुनझुने है। 5

समाज में नैतिकता का पतन हो रहा था। एक मनुष्य दमसरे मनूष्यसे जानवर के समान व्यवहार कर रहा है। उसके मन में किसी प्रकार का प्रेम भाईचारा नहीं था। कोई संस्कार उसे नतमस्तक नहीं करते, किसी सुख - दुख से उसे कोई साहुकार नहीं रहा -

इस शहर में जो कोई बारात हो या वारदात,
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिडकियाँ ।। 6

दुष्यंत कुमार बचपन से निडर प्रवृति के रहे हैं। इसी कारण वे रूढ़ि विरोधी, सरकार विरोधी, समाज विरोधी, यहाँ तक की स्वयं का विरोध करने वाले सृजक बन गए। यही वजह है कि वे अपात् काल में इंदिरा गांधी की शासन-व्यवस्था के विरोध में बोल उठें -

''गूंगे निकल पडे है, जुबां की तलाश में,
सरकार के खिलाफ ये साजिश तो देखिए। '' 7

तत्कालीन समय का भारतीय आदमी पूरी तरह से टूट चुका था, चाहे वह मजदूर हो, किसान हो या नौकरी पेशा आदमी, विविध पीडा़ओं से वह कराह उठता, इसी भाव को वे अपनी ग़ज़ल में व्यक्त करते हैं -

सिर से सीने में कभी, पेट से पावों में कभी,
एक जगह हो तो कहें, दर्द इधर होता है। 8

समाज में परिवर्तन आना स्वाभाविक है लेकिन अर्थिक स्तर इतना असंतुलित हो गया था कि अमीर और अमीर बन गया था तथा गरीब और गरीबा हो रहा था दुष्यन्त की कवि नजर से यह नजारा बच न सका। उसी को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं -

'आपके कालीन देखेगें किसी दिन
इस समय तो पाँव कीचड़ से सने है।' 9

इसी तरह धार्मिक प्रवृति का ढोंग करने वाले हिंदू और मुसलमानों का उन्होंने विरोध किया है। वेद और कुरान की बातें करने वाले जब आम जनता से अपने आप को भिन्न बताते या उन पर जुल्म करते तब उनकी कलम अपने आप चल जाती थी। कबीर के समान ही गलत परंपराए, प्रथाएॅ देखते तो उसका वे विरोध करते यह प्रवृति उनमें बचपन से ही विद्यमान थी।

'ये लोग होमो हवन में, यकीन रखते है।
चलो यहाँ से चले, हाथ जल न जाए कहीं। 10
घुटनों पे रख के हाथ खडे थे नमाज में,
आ-जा रहे थें, लोग जहेन में तमाम और।।' 11

इन तमाम ग़ज़ल के शेर को देखने के बाद ऐसा लगता है कि उन पर मध्य युगीन संतों का प्रभाव। परंतु वे आम इन्सानों में रहकर अपनी ग़ज़लों को उन्हीं के रंग में रंगाना चाहते थे। ठीक नवीन की उस पंक्ति के समान ('कवी कुछ ऐसी तान

सुनाओं जिससे उथल-पुथल मच जाए') अपने कवि धर्म का पालन कर रहे थे। अपनी काव्य क्षमता के बलबूते पर ही वे इस परिस्थिति को बदलना चाहते थे। हर व्यक्ति में इस चिंगारी को जलाना मानो उनका मंशा था -

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए। 12

दुष्यन्त से पहले गजल बड़े महलों की रौनक थी। उसका आम आदमी की जिंदगी से कोई वास्ता नहीं था। दुष्यन्त कुमार ने उसको महल और कोठों से निकालकर आम आदमी की पीडन, कसक, त्रास, दुख, कष्ट, वेदना से भरी जिंदगी मे ला खडा कर दिया। अब यह ग़ज़ल किसी सुंदर स्त्री से वार्तालाप नहीं करती , वह तो मजदूर - किसान की दर्द भरी दास्तान सूनाती है। पहले के समान उसे कोठों पर गाया नहीं जाता बल्कि उसमें लोगों के जिजीविशा पूण जीवन को महसूस किया जाता है। उनकी ग़ज़ल में बाजारो की छनक है गोरी के पायल की खनक नहीं। अतः दुष्यन्त कुमार ने आम आदमी की कसक को अपना वैयक्तिक और सामाजिक दर्द बनाकर प्रस्तुत किया जो समाज का आयना था।

दुष्यन्त की गजलों में जगह - जगह पर व्यंग्य के तीखे बान चलाए हुए हैं। शहरी जिंदगी में आदमी मशीन बन गया है। वहाँ की भीड जगंल के समान हो गई है। इतना ही नही वहाँ जंगल राज चलता है। उसकी अपनी जिदंगी उसने कब की गिरवी रख दी है , अब तो वह मुखडा लगा कर जीता है। उसके मुखडे हर जगह अलग है। यहाँ तक की उसके सही चेहरे की शनाख्त उसका परिवार भी भूल चूका है। वह गूँगा और बहरा बनकर जीवन यापन कर रहा है , यह आम आदमी है शहर का आम आदमी। उनकी नजर से कोई व्यक्ति बच नहीं सका।

अपनी गजलों के संबंध में वे स्वंय कहते हैं, बस अनूभूति की इसी जरा सी पूंजी के सहारे मैं उस्तादों और महारथियों के अखाड़े में उतर पड़ा। मैं जानता था कि हिंदी में निराला से लेकर शमशेर तक अनेक प्रतिभाशाली कवियों ने गजल के माध्यम को आजमाया है। ग़ज़ल का चस्का मुझे शमशेर की ग़ज़लें सुनकर लगा था। दुष्यन्त अपनी बात कहने में पूरी तरह सफल हुए है। आजादी के पूर्व और बाद की परिस्थीति को उन्होंने अपनी ग़ज़ल में व्यक्त किया है। आम आदमी की तकलिफ, संत्रास, घुटन, तनाव, निराशा, वेदना आदि का आयना ही उनकी ग़ज़लें है। अंत में हम उन्हीं के शब्दों में कहेंगे -

मेरे गीत तुम्हारे पास सहारा पाने आएगें।
मेरे बाद तुम्हे ये मेरी याद दिलाने आएगें।। 13

संदर्भ ग्रंथ:

1 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 57 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
2 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 57 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
3 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 57 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
4 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 63 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
5 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 43 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
6 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 21 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
7 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 61 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
8 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 47 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
9 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 43 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
10 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 25 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
11 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 34 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
12 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 30 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
13 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार पृष्ठ क्र. 35 - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009

*****